RNI No. UPHIN/2000/3766 ISSN No. 2581-3528 | ₹:20

केशव संवाद

श्रावण-भाद्रपद विक्रम सम्वत् 2078(अगस्त -2021)

सांस्कृतिक भारत

- धार्मिक पर्यटन की असीम संभावनाएं
- काल गणना की वैज्ञानिक प्रस्तुति है पंचांग
- राष्ट्रनीति बनाम राजनीति
- कला में भारतीयता का पुट

TAK™
WHEN RELIABILITY REALLY COUNTS
DarVi
WHEN RELAIBILITY REALLY COUNTS
TAK Technologies Pvt. Ltd.; a DIPP, MSME, NSIC and ISO 9001, 14001, 18001 certified, leading national level Security System Integrators, Night Vision and Thermal Vision equipment manufacturer & supplier with an experience of serving Indian Defense and Government organizations for last 15 years. Our expertise lies in catering to the security & maintenance requirements of our esteemed clients and delivering 100% customer satisfaction.
TAK has been continuously supporting the Local, State and Central Government agencies in their efforts towards maintaining the highly multifaceted systems and high-level of reliable security. We are also registered suppliers to various Governmental Power Utilities, Defense and Intelligence Departments in India. The following are some of the government agencies for whom we have successfully implemented projects or are registered with the organizations as an approved supplier.
• Indian Armed Forces
• Defense Research and Development Organization
• Ministry of External Affairs
• Ministry of Home Affairs etc.
CCTV SURVEILLANCE SYSTEM
GATE MANAGEMENT SYSTEMS
ACCESS CONTROL SYSTEM
INTRUSION DETECTION SYSTEM
CBRNE PRODUCTS
OPTO-ELECTRONIC EQUIPMENTS
TAK TECHNOLOGIES PVT. LTD.
(An ISO 9001:2008 Certified Company)
www.tak-technologies.com
A- 68 & 69, Sector- 80, Noida-201305, Uttar Pradesh, India
Tel : +91-120-4279676/78, 4185347 & 4129550 | Fax +91-120-4279677 | Email : kumar@tak-technologies.com

केशव संवाद

RNI No. UPHIN/2000/3766

ISSN No. 2581-3528

अगस्त, 2021
वर्ष : 21 अंक : 08

अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक
अणंज कुमार त्यागी

संपादक
कृपाशंकर

केशव संवाद पत्रिका प्रमुख
डॉ. प्रियंका सिंह

संपादक मंडल
डॉ. प्रदीप कुमार, डॉ. अखिलेश मिश्र
डॉ. नीलम कुमारी

पृष्ठ संयोजन
वीरेंद्र पोखरियाल

संपादकीय कार्यालय
प्रेरणा शोध संस्थान न्यास
सी-56/20 सेक्टर-62, नोएडा -201301
फोन नं. 0120 4565851, 2400335
ईमेल : keshavsamvad@gmail.com
वेबसाइट : www.prernashodh.com

स्वामी पंकज कुमार की ओर से मुद्रक/प्रकाशक सुखवीर प्रकाश द्वारा चंद्र प्रभु ऑफसेट प्रिंटिंग वर्क प्रा. लि. नोएडा से मुद्रित तथा केशव भवन 105, आर्यनगर सूरजकुंड रोड मेरठ से प्रकाशित

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। संपादक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का निपटारा मेरठ की सीमा में आने वाली सक्षम अदालतों/फोरम में मान्य होगा। संपादक

विषय सूची

सांस्कृतिक भारत की अहम जिम्मेदारी युवाओं पर	– डॉ. अनिल निगम	05
कालगणना की वैज्ञानिक प्रस्तुति है पंचांग	– प्रमोद भार्गव	06
विश्व में भारत की संस्कृति का प्रभाव	– डॉ. हेमेन्द्र कु. राजपूत	08
उपवास : हमारी परम्परा	– प्रो. आराधना	11
धर्मांतरणः समस्या या साजिश	– डॉ. नीलम महेन्द्र	12
पश्चिम बंगाल में चुनाव बाद की हिंसा कारण और निवारण	– प्रणय कुमार	14
भारतीय संस्कृति के मूल में है, महिला सशक्तीकरण	– अनुपमा अग्रवाल	16
धार्मिक पर्यटन की असीम संभावनाएं	– डॉ. अखिलेश मिश्र	17
प्राचीन भारत में विज्ञान एवं तकनीकी संस्कृति	– प्रो. हरेन्द्र सिंह	19
अखण्ड भारत सपना नहीं ! एक संकल्प है	– डॉ. प्रदीप कुमार	20
भारत में दान संस्कृति की एक झलक	– डॉ. मनमोहन सिंह	22
समरसता व विश्व बंधुत्व का प्रतीक रक्षाबंधन पर्व	– डॉ. नीलम कुमारी	24
राष्ट्रनीति बनाम राजनीति	– डॉ. उर्विजा शर्मा	26
बढ़ती जनसंख्या चिंता का विषय	– रंजना मिश्रा	27
स्वास्थ्यवर्धक भारतीय सांस्कृतिक परंपराएं	–डॉ. रूचि शर्मा	29
लव या साजिशों भरा जिहाद	– अनिता चौधरी	30
भारतीय संस्कृति और आर्थिक विकास	– डॉ. प्रियंका सिंह	32
कला में भारतीयता का पुट	– डॉ. नीरजा शर्मा	33
भारतीय संस्कृति में अंतर्निहित पर्यावरण संरक्षण	– डॉ. संजीव कुमार	34
संस्कृति को समृद्ध बनाती भारतीय भाषाएं	– डॉ. गीता पांडेय	36
हिन्दू जीवन दर्शन का आधार : पुरूषार्थ	–डॉ. शैलजा शर्मा	37
भारतीय संस्कृति में कर्म की प्रधानता	– आर.एस.डी चातक	38
संस्कृति संवहन में मीडिया की भूमिका	– डॉ. रामशंकर विद्यार्थी	40
भारतीय संस्कृति एवं आधुनिक शिक्षा	– मोहित कुमार सिंह	41
हमारे तीर्थ-हमारी धरोहर	– मोनिका चौहान	42
भारतीय संस्कृति के संरक्षक राष्ट्रीय नायक	– रिमझिम निगम	44
आधुनिकता के कारण विलुप्त होता पारंपरिक भारतीय...	– अजीत कु. पांडेय	46
रामकृष्ण परमहंश की महासमाधि	– महावीर सिंघल	47

संपादकीय.....

किसी भी देश राष्ट्र या समाज के मूल में उसकी संस्कृति होती है। संस्कृति न केवल वहां के रहने वाले लोगों की जीवन शैली दर्शाती है अपितु उनके भाव, समृद्धि, खानपान, सोच एवं एकता को भी आत्मसात करती है। संस्कृति के अभाव में अपनी पहचान बनाना असंभव है। जिस प्रकार किसी वृक्ष की तटस्थता का आधार उसका जड़ होता है और वह वृक्ष उतना ही फलता फूलता है। ठीक उसी प्रकार किसी भी समाज की सभ्यता का मूल उसकी संस्कृति होती है संस्कृति जितनी समृद्ध होती है समाज उतना ही प्रभावशाली होता है। संस्कृत के अभाव में सामाजिक ढांचे की कल्पना करना भी नामुमकिन है अर्थात यह कहा जा सकता है कि यदि सभ्यता को गतिशील रखना हो तो संस्कृति का संरक्षण आवश्यक है। कुछ लोग समाज में व्याप्त कुरीतियों को भी संस्कृति का ही अंग समझने की भूल कर बैठते हैं ऐसे में समय-समय पर जड़ जंगम से निकलकर संस्कृति का परिष्कार आवश्यक है।

भारतीय संस्कृति अपनी विविधता व संपूर्णता के साथ चिंतनशील है। जब हम चिंतनशील होकर कोई भी कार्य करते हैं और कला, संगीत, साहित्य विज्ञान तकनीकी के क्षेत्र में अग्रसर होते हैं तो निश्चित ही वह मार्ग उत्तम उसका गंतव्य श्रेष्ठ होता है। विविधता से परिपूर्ण भारतीय संस्कृति अपने भौगोलिक स्वरूप की भांति अलग-अलग है। हिमालय की बर्फ श्रृंखलाओं से लेकर दक्षिण के समुद्री तट तक पश्चिम के रेगिस्तान से लेकर पूर्व के नम डेल्टा तक, सूखी गर्मी से लेकर पहाड़ियों की तराई के मध्य पठार की ठंडक तक भारतीय जीवन शैली अपनी विविधता, भव्यता व समृद्धि से स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। सभ्यता और संस्कृति को शरीर और आत्मा के उदाहरण से भी समझा जा सकता है। शरीर तभी तक कर्म कर सकता है जब तक उसमें शक्ति अर्थात् आत्मा का वास होता है। अतः भारत की पहचान उसकी चिंतनशील रुपी संस्कृत को अगली पीढ़ी में हस्तांतरित करना एवं उसका संरक्षण करना प्रत्येक पीढ़ी का कर्तव्य है।

डॉ. प्रियंका सिंह
प्रमुख, केशव संवाद पत्रिका

मंथन

सांस्कृतिक भारत की अहम जिम्मेदारी युवाओं पर

डॉ. अनिल निगम
डीन, पत्रकारिता तथा जनसंचार विभाग
आईआईएमटी कॉलेज, ग्रेटर नोएडा

भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे पौराणिक संस्कृति है। हमारे देश की संस्कृति में ''वसुधैव कुटुंबकम्'' और ''सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामया।'' की परिकल्पना की गई है। यहां हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी आदि अनेक धर्मों के लोग रहते हैं। यहां पर अनेक भाषाएं और बोलियां प्रचलित हैं। प्राचीन सांस्कृतिक भारत का बहुत विशाल क्षेत्र एवं विराट वैभव रहा है। यहां विभिन्न कालखंडों में विभिन्न राजाओं एवं महाराजाओं ने राज किया और उनकी संस्कृति, परंपराओं और रीति–रिवाज़ों का भारत पर प्रभाव भी पड़ा। सिंधु घाटी की सभ्यतायें इसका विशेष उदाहरण है।

''उत्तरं यत् समुद्रस्य, हिमाद्रश्चैव दक्षिणम्। वर्ष तद् भारतं नाम, भारती यत्र संतति।।'' इसका आशय है कि हिंद महासागर के उत्तर में और हिमालय पर्वत की दक्षिण दिशा में जो भू–भाग है, उसको भारत कहते हैं और वहां के समाज को भारतीय के नाम से जाना जाता है। इस संपूर्ण धरा पर सात द्वीप एवं सात महासमुद्र माने जाते हैं। भारतीय एशिया द्वीप (जिसका प्राचीन नाम जम्बूद्वीप है) और इंदू सरोवरम् (जिसे आज हिंदू महासागर कहते हैं) के निवासी हैं। जम्बूद्वीप (एशिया) के मध्य में हिमालय पर्वत स्थित है। हिमालय पर्वत में विश्व की सबसे ऊंची चोटी का नाम सागरमाथा, गौरीशंकर है। इसे वर्ष 1835 में अंग्रेज शासकों ने एवरेस्ट नाम दिया।

विश्व के भूगोल ग्रन्थों के अनुसार, हिमालय के मध्य स्थल 'कैलाश मानसरोवर' के पूर्व में वर्तमान का इण्डोनेशिया और पश्चिम की ओर में ईरान देश अर्थात् आर्यान प्रदेश हिमालय के अंतिम छोर हैं। हिमालय 5000 पर्वत श्रृंखलाओं और 6000 नदियों को अपने अंदर समाहित किए हुए है। विश्व के एटलस के अनुसार, जब हम श्रीलंका (सिंहलद्वीप अथवा सिलोन) या कन्याकुमारी से पूर्व एवं पश्चिम की ओर दृष्टि डालते हैं तो हिन्द (इन्दु) महासागर इंडोनेशिया व आर्यान (ईरान) तक है। इन मिलन बिंदुओं के पश्चात ही दोनों ओर महासागर का नाम बदलता है।

इस तरह हिमालय, हिंद महासागर, आर्यान (ईरान) व इंडोनेशिया के बीच के सम्पूर्ण भू–भाग को आर्यावर्त अथवा भारतवर्ष या हिन्दुस्तान कहा जाता है। लेकिन अगर वर्तमान से 3000 वर्ष पूर्व तक के भारत की चर्चा की जाए तो यह तथ्य सामने आता है कि पिछले 2500 वर्ष में जो भी आक्रांता यूनानी (रोमन ग्रीक) यवन, हूण, शक, कुषाण, पुर्तगाली, फेंच, डच, अरब, तुर्क, तातार, मुगल और अंग्रेज आदि आए, इन सबका विश्व के सभी इतिहासकारों ने वर्णन किया है। सभी पुस्तकों में यह उल्लेख मिलता है कि आक्रांताओं ने भारतवर्ष अथवा हिंदुस्तान पर हमला किया।

ऐसा वर्णन शायद ही किसी भी इतिहास की पुस्तक में मिलता हो कि इन आक्रांताओं ने अफगानिस्तान, (म्यांमार), श्रीलंका (सिंहलद्वीप), नेपाल, तिब्बत (त्रिविष्टप), भूटान, पाकिस्तान, मालद्वीप या बांग्लादेश पर आक्रमण किया। यहां उल्लेखनीय है कि पूर्व में मिश्र, ईरान, इराक, साउदी अरब, रूस, कजाकिस्तान, मंगोलिया, बर्मा (वर्तमान में म्यांमार), चीन, इंडोनेशिया, मलेशिया, जावा, सुमात्रा, हिंदुस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, पाकिस्तान और अफगानिस्तान जम्बू द्वीप का ही अंग होते थे। पहले हिंदू जाति जम्बू द्वीप पर शासन करती थी लेकिन बाद में उसका शासन भारत तक ही रह गया। कुरुओं और पुरुओं की लड़ाई के बाद आर्यावर्त नामक एक नया क्षेत्र बना। इसमें वर्तमान हिंदुस्तान के कुछ भाग, संपूर्ण पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान का क्षेत्र था। लेकिन लगातार आक्रमण, धर्मांतरण और युद्ध के चलते घटकर केवल हिंदुस्तान रह गया है।

पाकिस्तान एवं बांग्लादेश निर्माण का इतिहास हम सभी को ज्ञात है। अंग्रेजों का लगभग 264 साल पूर्व स्थापित ईस्ट इण्डिया कंपनी के माध्यम से भारत में आना और बाद में शासक बनना इतिहास के पन्नों में दर्ज है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 1857 में भारत का क्षेत्रफल 83 लाख वर्ग किमी. था।

वर्तमान भारत का क्षेत्रफल 33 लाख वर्ग किमी. है। पड़ोसी 9 देशों का क्षेत्रफल 50 लाख वर्ग किमी. है।

वर्ष 1857 में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े गए स्वतंत्रता संग्राम से पहले और बाद के परिदृश्य पर नजर दौड़ाएंगे तो ध्यान में आएगा कि वर्ष 1800 अथवा उससे पूर्व विश्व के देशों की सूची में वर्तमान भारत के चारों ओर जो आज देश बन चुके हैं, उस समय देश नहीं थे। इनमें स्वतंत्र राजसत्ताएं थीं, परंतु सांस्कृतिक रूप में ये सभी भारतवर्ष के रूप में एक थे। इन देशों के बीच आवागमन, व्यापार, तीर्थ दर्शन, रिश्ते, पर्यटन आदि बे–रोकटोक होता था। सभी राज्यों की भाषाएं व बोलियों में अधिकांश शब्द संस्कृत के हैं। यहां की मान्यताएं एवं परम्पराएं भी समान हैं। खान–पान, भाषा–बोली, वेशभूषा, संगीत–नृत्य, पूजापाठ, पंथ संप्रदाय में विविधताएं होते हुए भी एकता के दर्शन होते थे।

संपूर्ण विश्व को शून्य की अवधारणा और ॐ की मौलिक ध्वनि देने वाले भारत की संस्कृति एक विचार, एक भाग, अथवा जीवन मूल्य है। इनका अनुसरण कर जीवन के विकास को प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति का उद्देश्य मनुष्य का सामूहिक विकास है। इसकी उदारता और समन्यवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। एक राष्ट्र की संस्कृति उसके लोगों के दिल और आत्मा में बसती है। भारतीय संस्कृति एक महान जीवनधारा है जो सनातन काल से सतत् प्रवाहित है। कहने का आशय है कि भारतीय संस्कृति स्थिर एवं अद्वितीय है। इतनी समृद्ध संस्कृति का संपूर्ण विश्व में प्रचार, प्रसार हो और लोग उसका अनुसरण और पालन करें, इसकी जिम्मेदारी समाज के एक वर्ग विशेष की नहीं है। इस पावन कार्य को क्रियान्वित करने के लिए समाज के हर वर्ग को आगे आना चाहिए। हालांकि यह बात भी सोलह आने खरी है कि आज सांस्कृतिक भारत के निर्माण, संरक्षण और संवर्धन की सबसे अहम जिम्मेदारी भारत की युवा पीढ़ी के कंधों पर है। ■

काल-गणना की वैज्ञानिक प्रस्तुति है पंचांग

प्रमोद भार्गव
वरिष्ठ साहित्यकार एवं पत्रकार

विक्रम संवत का पहला महीना है चैत्र। इसका पहला दिन गुड़ी पड़वा कहलाता है। ब्रह्म–पुराण में कहा गया है कि इसी दिन ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना की थी। इसलिए इसे नया दिन कहा गया। भगवान श्री राम ने इसी दिन बाली का वध करके दक्षिण भारत की प्रजा को आतंक से छुटकारा दिलाया था। इस कारण भी इस दिन का विशेष महत्व है। लेकिन दुर्भाग्यवश काल गणना का यह नए साल का पहला दिन हमारे राष्ट्रीय पंचांग का हिस्सा नहीं है।

कालमान या तिथि–गणना किसी भी देश की ऐतिहासिकता की आधारशिला होती है। किंतु जिस तरह से हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को विदेशी भाषा अंग्रेजी का वर्चस्व धूमिल कर रहा है, कमोवेश यही हश्र हमारे राष्ट्रीय पंचांग, मसलन कैलेण्डर का भी है। किसी पंचांग की काल–गणना का आधार कोई न कोई प्रचलित संवत होता है। हमारे राष्ट्रीय पंचांग का आधार शक संवत है। हालांकि शक संवत को राष्ट्रीय संवत की मान्यता नहीं मिलनी चाहिए थी, क्योंकि शक विदेशी थे और हमारे देश में हमलावर के रूप में आए थे। यह अलग बात है कि शक भारत में बसने के बाद भारतीय संस्कृति में ऐसे रच–बस गए कि उनकी मूल पहचान लुप्त हो गई। बावजूद शक संवत को राष्ट्रीय संवत की मान्यता नहीं देनी चाहिए थी। क्योंकि इसके लागू होने के बाद भी हम इस संवत के अनुसार न तो कोई राष्ट्रीय पर्व व जयंतिया मानते हैं और न ही लोक परंपरा के पर्व। तय है, इस संवत् का हमारे दैनंदिन जीवन में कोई महत्व नहीं है। इसके वनिस्पत हमारे संपूर्ण राष्ट्र के लोक व्यवहार में विक्रम संवत के आधार पर तैयार किया गया पंचांग है। हमारे सभी प्रमुख त्यौहार और तिथियां इसी पंचांग के अनुसार लोक मानस में मनाए जाते हैं। इस पंचांग की विलक्षण्ता है कि यह ईसा संवत् से तैयार ग्रेगेरियन कैलेंडर से भी 57 साल पहले वर्चस्व में आ गया था, जबकि शक संवत् की शुरूआत ईसा संवत् के 78 साल बाद हुई थी। अतएव हमने काल–गणना में गुलाम मानसिकता का परिचय देते हुए पिछड़ेपन को ही स्वीकारा।

प्राचीन भारत और मध्य–अमेरिका दो ही ऐसे देश थे, जहां आधुनिक सैकेण्ड से सूक्ष्मतर और प्रकाशवर्ष जैसे उत्कृष्ठ कालमान प्रचलन में थे। अमेरिका में मय सभ्यता का वर्चस्व था। मय संस्कृति में शुक्र–ग्रह के आधार पर काल–गणना की जाती थी। विश्वकर्मा मय दानवों के गुरू शुक्राचार्य के पौत्र और शिल्पकार त्वष्टा का पुत्र था। मय के वंशजो ने अनेक देशों में अपनी सभ्यता को विस्तार दिया। इस सभ्यता की दो प्रमुख विशेषताएं थीं, स्थापत्य–कला और दूसरी सूक्ष्म ज्योतिष व खगोलीय गणना में निपुणता। रावण की लंका का निर्माण इन्हीं मय दानवों ने किया था। प्राचीन समय में युग, मनवन्तर, कल्प जैसे महत्तम और कालांश लघुतम समय मापक विधियां प्रचलन में थीं। समय नापने के कालांश को निम्न नाम दिए गए हैं, 1/4 निमेष, यानी 1 तुट, 2 तुट यानी 1 लव, 2 लव, यानी 1 निमेष, 5 निमेष यानी एक काष्ठा, 30 काष्ठा, यानी 1 कला, 40 कला, यानी 1 नाड़िका, 2 नाड़िका यानी 1 मुहुर्त, 15 यानी, 1 अहोरात्र, 15 अहोरात्र, यानी 1 पक्ष, 7 अहोरात्र, यानी 1 सप्ताह, 2 सप्ताह, यानी 1 पक्ष, 2 पक्ष यानी 1 मास, 12 मास यानी 1 वर्ष। ईसा से 1000 से 500 साल पहले ही भारतीय ऋषियों ने अपनी आश्चर्यजनक ज्ञानशक्ति द्वारा आकाश मण्डल के उन समस्त तत्वों का ज्ञान प्राप्त

कर लिया था,जो काल–गणना के लिए जरूरी थे, अतएव वेद, उपनिषद्, आयुर्वेद, ज्योतिष और ब्राह्मण संहिताओं में मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, ग्रह, ग्रहण, ग्रह–कक्षा, नक्षत्र, विषव और दिन–रात का मान तथा उसकी वृद्धि–हानि संबंधी विवरण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।

ऋगवेद में वर्ष को 12 चंद्रमासों में बांटा गया है। हरेक तीसरे वर्ष चन्द्र और सौर वर्ष का तालमेल बिठाने के लिए एक अधिकमास जोड़ा गया। इसे मलमास भी कहा जाता है। ऋगवेद की ऋचा संख्या 1–164,48 में एक पूरे वर्ष का विवरण इस प्रकार उल्लेखित है–

द्वादश प्रधयश्चक्रमेंक त्रीणि नभ्यानि क उ तश्चिकेत।

तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकोवोऽर्पिताः शष्टिर्न चलाचलासः।

इसी तरह प्रश्नव्याकरण में 12 महिनों की तरह 12 पूर्णमासी और अमावस्याओं के नाम और उनके फल बताए गए हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में 5 प्रकार की ऋतुओं का वर्णन है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में ऋतुओं को पक्षी के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया है–

तस्य ते वसन्तः शिरः।

ग्रीष्मो दक्षिणः पक्षः वर्षः पुच्छम्।

शरत पक्षः।हेमान्तो मध्यम्।

अर्थात वर्ष का सिर वसंत है। दाहिना पंख ग्रीष्म। बायां पंख शरद। पूंछ वर्षा और हेमन्त को मध्य भाग कहा गया है। अर्थात् तैत्तिरीय ब्राह्मण काल में वर्ष और ऋतुओं की पहचान और उनके समय का निर्धारण प्रचलन में आ गया था। ऋतुओं की स्थिति सूर्य की गति पर आधारित थी। एक वर्ष में सौर मास की शुरूआत, चन्द्रमास के प्रारंभ से होती थी। प्रथम वर्ष के सौर मास का आरंभ शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को और आगे आने वाले तीसरे वर्ष में सौर मास का आरंभ कृष्ण पक्ष की अष्ठमी से होता था। तैत्तिरीय संहिता में सूर्य के 6 माह उत्तारयण और 6 माह दक्षिणायन रहने की स्थिति का भी उल्लेख है। दरअसल जम्बूद्वीप के बीच में सुमेरू पर्वत है। सूर्य और चन्द्रमा समेत सभी ज्योर्तिमण्डल इस पर्वत की परिक्रमा करते हैं। सूर्य जब जम्बूद्वीप के अंतिम आभ्यांतर मार्ग से बाहर की ओर निकलता हुआ लवण समुद्र की ओर जाता है, तब इस काल को दक्षिणायन और जब सूर्य लवण समुद्र के अंतिम मार्ग से भ्रमण करता हुआ जम्बूद्वीप की ओर कूच करता है, तो इस कालखण्ड को उत्तरायण कहते हैं।

ऋग्वेद में युग का कालखण्ड 5 वर्ष माना गया है। इस पांच साला युग के पहले वर्ष को संवत्सर, दूसरे को परिवत्सर, तीसरे को इदावत्सर, चौथे को अनुवत्सर और पांचवें वर्ष को इद्वत्सर कहा गया है। इन सब उल्लेखों से प्रमाणित होता है कि ऋग्वैदिक काल से ही चन्द्रमास और सौर वर्ष के आधार पर की गई काल–गणना प्रचलन में आने लगी थी, जिसे जन सामान्य ने स्वीकार कर लिया था। चंद्रकला की वृद्धि और उसके क्षय के निष्कर्षों को समय नापने का आधार माना गया। कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष के आधार पर उज्जैन के राजा विक्रमादित्य ने विक्रम संवत् की विधिवत शुरूआत की। इस हेतु एक वेधशाला भी बनाई गई, जो सूर्य की परिक्रमा पर केंद्रित है। इस दैनंदिन तिथि गणना को पंचांग कहा गया। किंतु जब स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अपना राष्ट्रीय संवत् अपनाने की बात आई तो राष्ट्रभाषा की तरह सामंती मानसिकता के लोगों ने विक्रम संवत् को राष्ट्रीय संवत् की मान्यता देने में विवाद पैदा कर दिए। कहा गया कि भारतीय काल–गणना उलझाऊ है। इसमें तिथियों और मासों का परिमाप धटता–बढ़ता है, इसलिए यह अवैज्ञानिक है। जबकि राष्ट्रीय न होते हुए भी सरकारी प्रचलन में जो ग्रेगेरियन कैलेंडर है,उसमें भी तिथियों का मान घटता–बढ़ता है। मास 30 और 31 दिन के होते हैं। इसके अलावा फरवरी माह कभी 28 तो कभी 29 दिन का होता है। तिथियों में संतुलन बिठाने के इस उपाय को 'लीप ईयर' यानी 'अधिक वर्ष' कहा जाता है। ऋग्वेद से लेकर विक्रम संवत् तक की सभी भारतीय कालगणनाओं में इसे अधिकमास ही कहा गया है। ग्रेगेरियन केलैंण्डर की रेखाकिंत की जाने वाली महत्वपूर्ण विसंगति यह है कि दुनिया भर की कालगणनाओं में वर्ष का प्रारंभ वसंत के बीच या उसके आसपास से होता है, जो फागुन में अंगडाई लेता है। इसके तत्काल

उज्जैन समय-गणना का मध्य-बिंदु

किसी भी काल का समय–गणना के लिए आधार, स्थान, केंद्र और प्रारंभ करने के स्थल महत्वपूर्ण होते हैं। इस क्रम में ऋषियों ने रेखांश, अक्षांश, दक्षांश और कर्क व भूमध्य–रेखा के साथ पृथ्वी के केंद्र बिंदु का भी अनुमान लगा लिया था। आज उज्जैन के जिस महाकाल मंदिर को हम सिंहस्थ के माहात्म्य के रूम में जानते हैं, उन महाकाल की भूमिका सबसे ज्यादा काल–गणना के खगोलीय महत्व से जुड़ी हुई है। स्कंद–पुराण में कहा भी गया है– 'कालचक्र प्रवर्तको, महाकालः प्रतापनः।'

प्राचीन भारत की समय–गणना का मध्य–बिंदु होने के कारण ही काल के आराध्य महाकाल हैं, जो द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक हैं। उज्जैन की अनूठी भौगोलिक स्थिति भारत के मानचित्र में 23.9 अंश उत्तर अक्षांश एवं 74–75 अंश पूर्व रेखांश वर समुद्री सतह से लगभग 1658 फीट ऊंचाई पर स्थित है। प्राचीन आचार्यों ने उज्जैन को शून्य रेखांश पर माना है। कर्क रेखा भी यहीं से गुजरती है। अतएव कर्क और भूमध्य–रेखा एक–दूसरे को यहीं उज्जयिनी में काटती हैं। जहां इन रेखाओं का मिलन–बिंदु उपस्थित है, वहीं महाकाल मंदिर का शिवलिंग प्रतिष्ठित है। अतएव वराह–पुराण में उज्जैन नगरी को मानव शरीर का नाभि–चक्र कहा है और महाकाल को इसका अधिष्ठाता माना है। दरअसल इसे मानव शरीर की संज्ञा इसलिए दी गई है, क्योंकि जिस प्रकार मां की कोख में गर्भनाल के माध्यम से नाभि से जुड़ा शिशु, जीवन के तत्वों का पोषण करता है, उसी प्रकार खगोलीय व ज्योतिषीय रहस्यों को खंगालने का केंद्र–बिंदु वही नाभि स्थल है। खगोलशास्त्रियों की यह भी मान्यता है कि उज्जैन पृथ्वी और आकाश के भी मध्य में स्थित है। मंगल ग्रह की उत्पत्ति का स्थल भी यही उज्जैन है और यहीं से मंगल ग्रह की दूरी सबसे कम है। इन भौगोलिक स्थितियों व अवस्थाओं को जानने के बाद ही प्राचीन ऋषियों ने उज्जैन से बहुत पहले वेधशाला स्थापित कर दी थी। प्राचीन ऋषि भास्कराचार्य ने मध्य–रेखा का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है। **यल्लोको उज्जयिनी पुरोपरी कुरूक्षेत्रादि देशान् स्पृशतः। सूत्रं मुरूगंत बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः।।** अर्थात, जो रेखा लंका और उज्जयिनी से होकर कुरुक्षेत्र आदि देशों को स्पर्श करती हुई सुमेरू से जाकर मिलती है, उसे भूमि की मध्य रेखा कहते हैं।

बाद ही चैत्र मास की शुरूआत होती है। इसी समय नई फसल पक कर तैयार होती है, जो एक ऋतुचक्र समाप्त होने और नये वर्ष के ऋतुचक्र के प्रारंभ का संकेत है। दुनिया की सभी अर्थ व्यवस्थाएं और वित्तीय लेखे–जोखे भी इसी समय नया रूप लेते हैं। अंग्रेजी महीनों के अनुसार वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से 31 मार्च का होता है। ग्राम और कृषि आधारित अर्थ व्यवस्थाओं के वर्ष का यही आधार है। इसलिए हिंदी मास या विक्रम संवत् में चैत्र और वैशाख महीनों को मधुमास कहा गया है। इसी दौरान चौत्र शुक्ल प्रतिपदा यानी गुड़ी पड़वा से नया संवत्सर प्रारंभ होता है। जबकि ग्रेगेरियन में नए साल की शुरूआत पौष मास अर्थात जनवरी से होती है,जो किसी भी उल्लेखनीय परिर्वतन का प्रतीक नहीं है।

विक्रम संवत् की उपयोगिता ऋतुओं से जुड़ी थी, इसलिए वह ऋग्वैदिक काल से ही जनसामान्य में प्रचलन में थी। बावजूद हमने शक संवत् को राष्ट्रीय संवत् के रूप में स्वीकारा, जो भारतीय सांस्कृतिक परंपरानुसार कतई अपेक्षित नहीं है। क्योंकि शक विदेशी होने के साथ आक्रांता थे। चंद्रगुप्त द्वितीय ने उज्जैन में शकों को परास्त कर उत्तरी मध्य–भारत में उनका अंत किया और विक्रमादित्य की उपधि धारण की। यह ऐतिहासिक धटना ईसा सन् से 57 साल पहले घटी और विक्रमादित्य ने इसी दिन से विक्रम संवत की शुरूआत की। जबकि इन्हीं शकों की एक लड़ाकू टुकड़ी को कुषाण शासक कनिष्क ने मगध और पाटलिपुत्र में ईसा सन् के 78 साल बाद परास्त किया और शक संवत् की शुरूआत की। विक्रमादित्य को इतिहास के पन्नों में 'शकारी' भी कहा गया है, अर्थात शकों का नाश करने वाला शत्रु। शत्रुता तभी होती है, जब किसी राष्ट्र की संप्रभुता और संस्कृति को क्षति पहुंचाने का दुश्चक्र कोई विदेशी आक्रमणकारी रचता है। इस सब के बावजूद राष्ट्रीयता के बहाने हमें ईसा संवत् को त्यागना पड़ा तो विक्रम संवत् की बजाय शक संवत् को स्वीकार लिया। अर्थात पंचांग यानी कैलेंडर की दुनिया में 57 साल आगे रहने की बजाय हमने 78 साल पीछे रहना उचित समझा? अपनी गरिमा को पीछे धकेलना हमारी मानसिक गुलामी की विचित्र विडंबना है, जिसका स्थायीभाव बदला जाना राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रबोध के लिए आवश्यक है।

विश्व में भारत की संस्कृति का प्रभाव

डॉ. हेमेंद्र कुमार राजपूत
इतिहास, भूगोल एवं भू–राजनीति के विशेषज्ञ
एवं मेरठ प्रांत सामाजिक सद्भाव प्रमुख - रा.स्व.संघ

प्राचीनकाल से ही भारत की संस्कृति का प्रभाव विश्व भर में रहा है। 'मय' नामक सभ्यता और संस्कृति के लोग अति प्राचीन काल में भारत से स्थानान्तरित होकर अफ्रीका के मोरक्को, मध्य अमेरिका के 'मैक्सिकों' में बस गये थे। वे लोग उस काल के बहुत बड़े शिल्पी थे। 'मय' जाति के लोगों ने महाभारत काल में श्रीकृष्ण और अर्जुन के कहने पर खाण्डवप्रस्थ में इन्द्रप्रस्थनगर और विशाल भवन का निर्माण किया था जो उस काल का बहुत सुन्दर, भव्य और वैज्ञानिक एवं रेखागणितीय आधार पर बना था। जिसे देखकर दुर्योधन और अन्य गणराज्यों से आये राजा भी अचम्भित थे। ऐसे शिल्पकार स्थानान्तरित होकर जब मैक्सिको में बसे तो वहां पर भी उन्होंने चमत्कारिक भवनों, हवन कुण्डों और चैत्यगृहों का निर्माण किया। वर्तमान मैक्सिको के उत्खनन से ऐसी पुरातात्विक सामग्रियां एवं शिल्प कला के भौमिक दस्तावेज प्राप्त हुए जो आश्चर्यचकित करते हैं और भारत के पाण्डव किला के उत्खनन से मेल खाते हैं। पाण्डव किला दिल्ली में स्थित हैजिसे कुछ इतिहासकार पुराना किला कहते हैं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता से मेल रखने वाले अवशेष मैक्सिको के संग्रहालयों में प्रमाण प्रस्तुत करते है कि 'मय' सभ्यता भारत से ही मैक्सिको पहुंची। पुरातत्वविद्वान डॉ. वाकणकर जी ने अपनी शोधपरक पुस्तकों व पत्रों में इनका उल्लेख किया है। आज भी अमेरिकाऔर भारत के इतिहास में 'मय' सभ्यता को पढ़ाया जाता है।

महाभारत कालीन महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास केवल एक लेखक ही नहीं थे, बल्कि वह क्षेत्रीय ऐतिहासिक भूगोल के अनुसंधानकर्ता भी थे। उन्होंने अपने पांच शिष्यों के साथ विश्व के सभी द्वीपों का प्रवास किया था। वह हवाईयन्त्रों के माध्यम से एकद्वीप से दूसरे द्वीप में आसानी से और शीघ्रता से पहुंच जाया करते थे और उन द्वीपों पर प्राकृतिक और मानवीय दृष्टिकोण से अनुसंधान में संलग्न रहते थे। उन द्वीपों ओर क्षेत्रों के मानवों को सभ्य और संस्कारित करने के लिए भारत के मानवों की प्रेरणा देकर भेजा करते थे। वे भारतीय लोग ही वहां रहकर वहां के मूल निवासियों को अनुशासित एवं संस्कारित करते थे। महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास से पूर्व के 27 व्यास और सप्तर्षिगण भी विभिन्न द्वीपों एवं प्रेदशों में प्रवास करके वहां के मूल असभ्य लोगों को सभ्य बनाते हुए संस्कारित एवं अनुशासित करते रहे थे। यह एक प्राचीन काल से चली आ रही प्रवाहमान प्रवासी सांस्कृतिक श्रृंखला है जो गुप्तकाल तक बराबर चलती रही और संस्कृति और सभ्यता के प्रभाव का प्रवासी योगदान उन प्रदेशों को देती रही जो वर्तमान में भी भारतीय संस्कृति के प्रभाव को अपने में संजोये हुए हैं।

उत्तरी अफ्रीका में भी 'कुश' सभ्यता पर भारतीय संस्कृति सभ्यता का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। किसी समय उत्तरी अफ्रीका महाद्वीप में सहारा का रेगिस्तान नहीं था वह हरा–भरा क्षेत्र था, उसमें ही भारतीय प्रवासी लोगों ने 'कुश' सभ्यता को जन्म दिया। वहां 'कुश' के पेड़–पौधे

बहुतायत थे इसलिए इस क्षेत्र को 'कुश द्वीप' कहने लगे। त्रेता युग में भगवान श्रीराम के पुत्र कुश के सुशासन के कारण यहां कुश सभ्यता का विकास हुआ। कुछ मान्यता ऐसी भी है लेकिन पुराणों और महाभारत के आधार पर 'कुश' सभ्यता का केन्द्र उत्तरी अफ्रीका में त्रेता युग से बहुत पहले बन चुका था। यह तथ्य सत्यपरक है अफ्रीका की 'कुश' सभ्यता का विकास भारतीयों ने ही किया। अफ्रीका के रेगिस्तान, लीबिया, ट्यूनीशिया, मिस्र आदि के प्राप्त ऐतिहासिक प्रमाण तथा भारतीय संस्कृति के प्रभाव को ही प्रदर्शित करते हैं।

महाभारत काल के बाद युधिष्टिर की आठवीं पीढ़ी में नदी–घाटियों में आयी भयंकर बाढ़ के कारण ये सभ्यताऐं प्रायः नष्ट हो गयी थी। उस समय भारत सम्राट नेमिचक्र (चक्षु) का सुशासन था। हस्तिनापुर भी उसी बाढ़ में बह गया था। सिन्धु नदी पर अवलम्बित राज्य सिन्ध प्रदेश, भद्र राज्य आदि भी बाढ़ की चपेट में आकर नष्ट हो गये थे। मोहन जोदड़ो और हड़प्पा किसी नई विशेष सभ्यता अवशेषित नगर नहीं थे बल्कि मोहन जोदड़ो जयद्रथ की राजधानी का प्राचीन नगर जो बाढ़ की मिट्टी में दब गया था और एक टीला बन गया था। इसी प्रकार शल्य की भद्रराज्य की राजधानी हड़प्पा नामक टीलों के नीचे दबी पड़ी थी जो 1922 के आर्क्यिोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया के उत्खनन् से ये प्राचीन नगर प्राप्त हुए। मोहन जोदड़ो और हड़प्पा मिट्टी के प्राचीन टीलों के नाम थे जिन्हें कनिष्क के शासनकाल में इन नामों से पुकारा गया। यह सिंधु नदी घाटी की सभ्यता के अवशेष थे जो महाभारत कालीन सभ्यता थी। इन नदी–घाटी की सभ्यताओं के नष्ट होने का कारण भौगोलिक घटना थी जिसे बाढ़ आपदा कहते हैं।

महाभारत काल के लगभग दो हजार वर्षों के बाद बौद्ध काल का और जैनकाल का आगमन हुआ। इस काल खण्ड को बौद्धों का प्रवासी काल भी कह सकते हैं। पश्चिम में मिस्र देश से लेकर पूर्व में चीन और वियतनाम तक बौद्ध भिक्षुओं के सांस्कृतिक प्रवास हुए। "बुद्धं शरणं गच्छामि, संघ शरणं गच्छामि, धम्म शरणं गच्छामि" का सन्देश लेकर लगभग एक हजार वर्षों में बौद्ध प्रचारकों ने भारतीय संस्कृति को वहां के जनजीवन में समाहित कर दिया, जहां–जहां और जिन–जिन राज्यों में बौद्ध भिक्षु, प्रचारक अविवाहित रहते हुए गये, वहां उन्होंने अपनी जीवन समर्पण भाव से लोगों में मानवता और भारतीयता के सन्देश दिये। उनके प्रभाव से जनसमाज बौद्ध बनते गये और भारतीय हिन्दू संस्कृति के प्रभाव में समाहित होते गये।

इसके बाद मौर्य काल खण्ड और गुप्त काल (स्वर्णयुग) में हिन्दू सनातन धर्म संस्कृति का प्रचार–प्रसार भी होता गया। भारत के गणराज्यों के राजकुमार वर्तमान भारतीय भूभाग से बाहर सुशासन, अनुशासन और सांस्कृतिक नियोजन के लिए जाने लगे और वहां सुदूर देशों में नगर नियोजन, मन्दिर निर्माण, शिल्प नियोजन, बौद्ध मट नियोजन, शिक्षा में संस्कृत भाषा का विनियोजन करते हुए आर्थिक विकास नियोजन करने लगे। फलस्वरूप आज वियतनाम, फिलीपाइन्स, जापान, दक्षिण चीन, लाओस, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया द्वीप समूह, मलेशिया, सिंगापुर, थाइलैड, बर्मा (म्यांमार), श्रीलंका, मालदीव, भूटान, नेपाल, तिब्बत, अफगानिस्तान, ईरान, इराक, कुवैत, साउदीअरब, सीरिया, जोर्डन, मिश्र आदि देशों में बौद्ध हिन्दुओं और शैव, वैष्णव हिन्दुओं के मन्दिर–मठ जैसे किसी न किसी रूप में भारतीय संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है। अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के बाद के कालखण्ड में अनेक मुस्लिम शासकों, आक्रमणकारियों एवं आक्रान्ताओं ने भारतीय संस्कृति के दैदीप्यमान, गौरवशाली इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों को जलाने और नष्ट करने की कोशिश की फिर भी वटवृक्ष के समान सुदृढ़ खड़े होकर इन तमाम देशों में

विशेषकर ईरान से लेकर वियतनाम तक भारतीय संस्कृति से प्रभावित अवशेष भले ही वे खण्डित कर दिये गयो हों, अपनी प्राचीन सांस्कृतिक जीवन की कहानी को बयां (प्रदर्शित) कर रहे हैं।

पश्चिम एशिया (जम्बूद्वीप) के भारतीय गण राज्यों पर मिस्री सभ्यता और बेबिलोन (मैसोपोटामिया) इराक में सभ्यता ने जन्म लिया किन्तु वे सभ्यताएं भारत की मिश्र सभ्यताएं थी क्योंकि उनका जन्म भारतीय संस्कृति के आधार पटल पर ही हुआ था उनके ग्रन्थों में वैदिक संस्कार के रूप मेंमिलते हैं। ग्रीक योद्धा सिकन्दर ने इन सभ्यताओं को बहुत हानि पहुंचाई और बाद में उसका ही अनुकरण करते हुए मोहम्मद मूसा के अनुयायी मुसलमानों ने बचा हुआ शेष पश्चिम एशिया छठी शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक के लगभग पांच सौ वर्षों में नष्ट–भ्रष्ट करके बलात् धर्म परिवर्तन कराकर इस्लामिक (मुस्लिम) राज्य स्थापित कर दिये। मिश्री सभ्यता, बेबिलोन सभ्यता, किरात, नागवंशी, कश्यप वंशी, शैववंशी और बौद्धअनुयायी वंशज का एक व्यक्ति भी शेष नहीं छोड़ा। मार दिये गये अथवा यातना देकर बलात् धर्म परिवर्तित कर दिये गये। अगले महज (केवल) 350 वर्षों में ईरान (पर्सियन हिन्दू देश) और मध्य एशिया के देश (तजाकिस्तान, किर्गीस्तान, उजबेकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान आदि) भी मुस्लिम राज्य बना दिये गये। इन प्रदेशों में विशेषकर पश्चिमी एशिया में भारतीय संस्कृति के अवशेष बहुत कम मिलते हैं। मुस्लिम (इस्लामिक) कट्टरपंथियों ने यहां एक हजार वर्षों में सब कुछ नष्ट कर दिया। यहां के मुस्लिमों ने सीरिया (असुर देश) की असुर संस्कृति को अपना लिया और भारतीय हिन्दू संस्कृति का समूल नाश कर दिया। भारतीय संस्कृति का सबसे अधिक प्रभाव पूर्वी एवं दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में आज भी मौलिक रूप से दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि यहां मुस्लिम आक्रांताओं के अधिक आक्रमण नहीं हुए। मंगोल कुवलई खान का आक्रमण सर्वविदित है जिसने कुछ ही वर्षों में चीन, हिन्दचीन, कम्बुज, श्याम, चम्पा (क्रमशः लाओस, कम्बोडिया, थाइलैंड, वियतनाम), मलयदेश (मलेशिया), हिन्दू एशिया या हिन्देशिया (इण्डोनेशिया) आदि देशों को अपने अधीन कर लिया किन्तु इण्डोनेशिया में उसके मरने के बाद सभी स्वतंत्र होकर अपनी संस्कृति को बचाने में सफल रहे लेकिन विध्वंसता के चिन्ह वहां विद्यमान हैं।

अंकोरवाट का मंदिर (कम्बोडिया) विष्णु भगवान को समर्पित विश्व प्रसिद्ध है। हिन्दुस्थान में भी इतना विशाल और शिल्पकला प्रतिमूर्त मंदिर नहीं है जो हिन्दू संस्कृति के प्रभाव को कम्बुल देश में दर्शा रहा है। वियतनाम (चम्पा देश) में अधिकांश नगरों के अधिकांश चौराहों पर छत्रपति शिवाजी की मूर्तियां (स्टेच्यू) और श्रीगणेश लक्ष्मी, कुबेर के मंदिर हिन्दु संस्कृति प्रवाह के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं वहां के लोग शिवाजी को अपना हीरो मानते हैं। थाइलैंड के सिक्कों पर श्रीगणेश के चित्र और लक्ष्मी के चित्र हिन्दू (भारतीय) संस्कृति प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं। इण्डोनेशियाई लोग अपने नाम के साथ राम लिखना–बोलना पसन्द करते हैं। श्रीराम लीलाएं प्रतिवर्ष नाट्य रूप में खेलते हैं।

भारतीय संस्कृति के प्रभाव के कुछ उदाहरण –

1. कम्बोडिया क्षेत्र में 'नाग' वंश के लोग रहते थे। इनकी स्वामिनी नाग कन्या 'सोमा' थी। भारतीय वीर कौडिन्य ने उसे वस्त्र भेंट किये और विवाह किया। कौडिन्य के पीछे–पीछे अनेक हिन्दूवीर बाद में इस कम्बुज देशमें आये और वहां की नागकन्याओं से विवाह करके वहीं बस गये। कम्बुज में उस समय वियतनाम, लाओस, दक्षिणी चीन, थाइलैंड राज्य सम्मिलित थे। पांचवी शदी में कोडिन्य ने जयवर्मन की उपाधि ली। जयवर्मन के अधिकांश वंशजों ने दक्षिण पूर्व एशिया के देशों पर अनुशासन किया।

2. महेन्द्र वर्मन के पुत्र ईशावर्मन ने 'चम्पा' देश (वियतनाम) की राजकन्या से विवाह करके वहां अपना राज्या स्थापित किया (वि. सम्वत् 668 में)।

3. श्यामदेश (थाइलैंड) में अयोध्या के सूर्यवंशी सम्राट 'रामाधिपति' ने वि.सं. 1400 के लगभग 'अयोध्या' नगरी बसाकर शासन किया। वह बौद्धमत का अनुयायी था। वहां का राष्ट्रीय ग्रन्थ रामायण है।

4. चम्पा देश में आज का 'दंग दोंग' नगर वियतनाम का प्राचीन 'इन्द्रपुर' था। वि.सं.710 में 'प्रकाशधर्म' ने अपने राज्य काल में अनेक मंदिरों का निर्माण कराया।

5. लाओस देश वास्तव में प्राचीन काल का 'लव' देश है। श्रीरामचन्द्र के पुत्र 'लव' के वंशजो ने 'लोबपुरी' नगरी बसाई जो 'लवपुरी' का ही अपभ्रंश है। 'लव फू' पर्वत को यहां के लोग 'कैलाश' पर्वत मानते हैं। 'लवदेश' का प्रथम हिन्दू राजा श्रृतवर्मन था। इनके पुत्र श्रेष्ठवर्मन ने यहां अपनी राजधानी 'श्रेष्ठपुर' बनाई। यहां के उत्सव त्यौहारों में वर्ष प्रतिपदा, व्यासपूजा, विजयादशमी एवं बसन्त पंचमी प्रमुख है। यहां अनेक मन्दिर है यहां की भाषा में संस्कृत और पाली की भरमार है।

6. सुमामा में श्रीविजय का राज्य वैभव के शिखर पर पहुंचा।

7. अश्ववर्मन नामक साहसी वीर ने और आगे जाकर बोर्निया पर शासन किया वर्मन से ही वह 'वरुण' देश बना जिसे आज ओर्निया कहते हैं।

8. जावा द्वीप में 10 वीं शदी तक शैलेन्द्र वंश के राजा का शासन था।

9. 20 वीं शताब्दी तक 'बालीद्वीप' हिन्दूराष्ट्र बना रहा। बाली (यवद्वीप) का महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'ब्रह्माण्डपुराण' है। यहां रामायण व महाभारत भी लोकप्रिय है। वि. स. 978 में 'सिन्दोक' नामक हिन्दू राजा ने यहां शासन किया। वि.सं. 1082 में यहां 'राजेन्द्र' का शासन था।

उपरोक्त उद्धवरणों से प्रमाणित होता है कि भारतीय हिन्दू राजा व राजकुमारों ने भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण प्रभाव इन क्षेत्रों व प्रदेशों में स्थापित किये जो आज भी किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। ■

उपवास : हमारी परम्परा

प्रो. आराधना
प्रोफेसर, इतिहास विभाग
चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

किसी भी देश की परम्परागत प्रथायें और उसके निवासियों में प्रचलित रीति–रिवाज उस देश की संस्कृति का दर्पण होते हैं। उनके द्वारा ही उस देश की सांस्कृतिक प्राचीनता का आंकलन किया जाता है। सनातन हिन्दू परम्परा के संदर्भ में बात की जाए तो व्रत–उपवास हमारी संस्कृति का ऐसा ही पक्ष है जिन्हें हम अनवरत रूप से निभाते आ रहे हैं।

भारतीय ऋषि मनीषियों ने मानव के हित चिंतन हेतु व्रत–उपवास को महत्वपूर्ण बताया। साथ ही उन्हें सभी लोग स्वीकार करें इसलिए उन्हें धर्म से सम्बद्ध कर दिया गया। उनका आध्यात्मिक पक्ष व महत्व भी बताया गया।

हिन्दी/हिन्दू माह में दो पक्ष शुक्ल पक्ष (उजाला) और कृष्ण पक्ष (अंधेरा) होते हैं। हर पक्ष में 15 दिन अर्थात् 15 तिथियां होती हैं। यथा–प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चर्तुदशी, अमावस्या/पूर्णिमा। इनमें से चतुर्थी, एकादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या व पूर्णिमा उपवास हेतु श्रेष्ठ मानी गयीहै। इसी प्रकार सातों दिन– सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, रवि ये सभी वार (दिन) किसी न किसी देवसत्ता से जोड़कर उन्हें आध्यात्मिक दृष्टि से महत्व प्रदान किया गया। ताकि मानव स्वयं को स्वस्थ, सुखी व निरोगी रख सके।

मानव यानि हम सभी में एक सहज वृत्ति है कि हम धर्म/अध्यात्म से अनुप्राणित होते हैं। हम उस परम सत्ता से सदैव प्रभावित होते हैं, उससे सम्बद्ध रहना चाहते हैं इसका कारण स्पष्टतः हमारी देवसत्ता, परमसत्ता के प्रति श्रद्धा, हमारा समर्पण, हमारा विश्वास, हमारी निष्ठा के साथ–साथ और भी बहुत कुछ।

पक्षों के अनुसार देखें तो कुछ व्रत उपवास माह में दो बार आते हैं। (यद्यपि कुछ लोग मात्र शुक्ल पक्ष के व्रतों को करना सही मानते हैं।) सप्ताह के अनुसार किए जाने वाल व्रत–उपवास माह में चार बार किए जाते हैं। इसके साथ ही बहुत से उपवास व्रत ऐसे हैं जो साल में एक बार आते हैं जैसे भाद्रपद में कृष्ण जन्माष्टमी, कार्तिक मास में करवाचौथ और अहोई अष्टमी आदि। नवरात्र साल में दो बार आते हैं तथा कई दिन की अवधि के होते हैं। वस्तुतः नवरात्र दो ऋतुओं की संधि वेला में आते हैं इसलिए खान–पान का ध्यान रखना आवश्यक होता है। नवरात्र चैत्र और शरद माह में आते हैं। (यद्यपि दो गुप्त नवरात्रों का भी विधान है जो आषाढ़ और शिशिर ऋतु में होते हैं। विशिष्ट सिद्धियों हेतु इस अवसर पर ऋषि–मुनि आदि इन नवरात्रों में पूजा–अर्चना, व्रत–उपवास आदि करते हैं।) पर मुख्यतः चैत्र और शारदीय नवरात्र के व्रत, उपवास पूरे विधि–विधान से सभी सनातनी लोग करते हैं। शक्ति स्वरूपा मां दुर्गा के सभी नौ रूपों की विधि विधान से पूजा अर्चना कर नौ दिन के उपवास रखकर अंतिम दिन कंचक (नौ कन्यायें एक बालक) को जिमाया जाता है। इसी तरह साल भर प्रत्येक दिन किसी न किसी व्रत उपवास का क्रम चलता रहता है।

वस्तुतः उपवास रखने के पीछे हमारे ऋषि–मनीषियों की दूर दृष्टि, तार्किक चिंतन व आध्यात्मिक महत्व का सुंदर समावेश परिलक्षित होता है। 'अन्न' में मादकता होती है। अर्थात् अन्न में एक प्रकार का नशा होता है। हम सभी भोजन करने के बाद आलस्य के रूप में इस नशे का अनुभव करते हैं। पके हुए अन्नके नशे में एक अलग प्रकार की शक्ति होती है जो तेल, मसालों व स्वाद के साथ शरीर में जाकर दुगुनी हो जाती है। इस शक्ति को "अधि भौतिक शक्ति" कहा गया है। इस शक्ति की प्रबलता में उस "आध्यात्मिक शक्ति" को जिसे हम पूजा–उपासना के माध्यम से एकत्र कर सकते हैं, वह नष्ट हो जातीहै। अतः मानव मात्र के कल्याण के लिए हमारे मनीषियों ने सम्पूर्ण आध्यात्मिक अनुष्ठानों में उपवास को प्रथम स्थान पर रखा।

सूत्र वाक्य "विषया विनिवर्तन्तेनिराहारस्य देहिनः" अर्थात् उपवास, विषय–वासना से निवृति का अचूक उपाय है। शरीर, इन्द्रियों और मन पर विजय पाने के लिए उपवास परम आवश्यक है। उपवासी व्यक्ति ही जीवन में पूर्ण रूप से सुख–शांति और सम्पन्नता प्राप्त करते हैं।

'व्रत' का संकल्प लेकर जिस दिन हम अन्न ग्रहण नहीं करते, उस दिन हम पूर्ण जाग्रत अवस्था में रहते हैं। हम उस दिन अलग तरह की स्फूर्ति का अनुभव करते हैं। आयुर्वेद और आज के वैज्ञानिक, दोनों का यह कहना है कि व्रत और उपवास से अनेक शारीरिक व्याधियों का समूल नाश सम्भव है। इसके साथ ही अनुसंधानों से यह तथ्य भी पूर्णतः स्पष्ट है कि उपवास मानसिक व्याधियों के दमन का भी अमोघ उपाय है।

वस्तुतः उपवास के दिन निराहार रहना चाहिए या अल्पाहार करना चाहिए। (पूर्व काल में लोग एकादशी के दिन निराहार रहते थे।) परन्तु आज की भाग–दौड़ व तनाव भरी जिंदगी में यह सम्भव नहीं है इसलिए फलाहार, रसाहार, नींबू–शहद मिश्रित जल, दूध और मेवों का सेवन उपवास के दिन किया जा सकता है। (कुछ लोग सब्जी मिश्रित तली खिचड़ी का सेवन भी उपयोगी मानते हैं) परंतु अत्यधिक चाय, कॉफी, तले–भुने व गरिष्ठ खाद्य–पदार्थों का सेवन उपवास में फायदे के स्थान पर नुकसान ही पहुंचाता है। इसलिए उपवास के दिन संतुलित पौष्टिक आहार लेना ही बुद्धिमत्ता है।

व्रत का अर्थ ही है– जो निश्चिय पूर्ण निश्चित नियमों का पालन करते हुए, पूर्ण किया जाए। उपवास अर्थात् उप+वास। उप यानि पास, वास यानि निवास करना/रहना। अपनी अभीष्ट, परमसत्ता के पास, निश्चित नियमों का पालन करते हुए जो कार्य किये जायें, वह सब उपवास में आते हैं। बहुत से सनातनी उपवास के दिन दान, पुण्य खाद्यान्न वितरण (कच्चा, पक्का भोजन) आदि की बात भी करते हैं।

आज भारतीय ही नहीं वरन् विदेशी वैज्ञानिक व विद्वान भी सनातन धर्म के मनीषियों के वैज्ञानिक चिंतन से प्रभावित होकर स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि सप्ताह में एक दिन का उपवास तो सभी को रखना चाहिए। इससे आमाशय, यकृत एवं पाचन तंत्र को विश्राम मिलता है। उनकी सफाई (Over whelm) भी स्वतः ही हो जाती है। इस रासायनिक प्रक्रिया (Lubrication) से पाचन तंत्र मजबूत हो जाता है। तथा व्यक्ति की आन्तरिक शक्ति (inner power) के साथ–साथ उसकी आयु, बल और तेज में भी वृद्धि होती है।

सनातन संस्कृति के व्रत–उपवास के दैहिक, भौतिक पक्ष का महत्व जानकर बहुत से विदेशी भी एकादशी, अमावस्या, पूर्णिमा के साथ ही प्रति सप्ताह आने वाले व्रतों को करने लगे हैं। आईए, बीमारियों के निवारण व स्वयं को स्वस्थ रखने हेतु हम सभी अपनी संस्कृति के इस पक्ष को अपनायें वे वेंदों के "जीवेद् शरदः शतम्" सूक्त वाक्य को चरितार्थ करें। ■

धर्मांतरण : समस्या या साजिश

डॉ. नीलम महेन्द्र
लेखिका एवं वरिष्ठ स्तंभकार

कुछ दिनों पहले उत्तर प्रदेश में लगभग एक हजार लोगों के धर्मांतरण का मामला सामने आया था। खबरों के अनुसार इन लोगों में मूक बधिर बच्चों से लेकर युवा और महिलाएं भी शामिल हैं। मामले की गंभीरता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि धर्म बदलने वाले इन लोगों में ज्यादातर पढ़े लिखे युवा थे। सरकारी नौकरी करने वाले से लेकर बीटेक कर चुका शिक्षक और एमबीए पास युवक से लेकर सॉफ्टवेयर इंजीनियर, एमबीबीएस डॉक्टर तक इनमें शामिल हैं।

दिलचस्प बात यह है कि ये सब उस प्रदेश में हुआ जहां धर्मांतरण के खिलाफ 2020 में ही एक सख्त कानून लागू कर दिया गया था। लेकिन हमारे देश में धर्मांतरण की समस्या केवल एक प्रदेश तक सीमित नहीं है। झारखंड, मध्यप्रदेश छत्तीसगढ़ एवं केरल जैसे देश के कई राज्यों में धर्मांतरण के मामले आए दिन सामने आना एक साधारण बात है। सत्य तो यह है कि हमारे देश में धर्मांतरण की समस्या काफी पुरानी है। यही कारण है कि इस विषय में महात्मा गांधी कहते थे कि, 'मैं विश्वास नहीं करता कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का धर्मांतरण करे। दूसरे के धर्म को कम करके आँकना मेरा प्रयास कभी नहीं होना चाहिए। मेरा मानना है कि मानवतावादी कार्य की आड़ में धर्म परिवर्तन रुग्ण मानसिकता का परिचायक है।'

दरसअल कभी मानवता के नाम पर तो कभी गरीबी और लाचारी का फायदा उठाकर, कभी बहला फुसलाकर तो कभी लव जिहाद के धोखे से हमारे देश में बड़ी तादाद में लोगों का धर्मांतरण कराया जाता रहा है। किंतु उत्तर प्रदेश के ताजा घटनाक्रम से इस विषय की संवेदनशीलता इसलिए बढ़ जाती है क्योंकि अब तक अधिकतर गरीब मजलूम और कम पढ़े लिखे लोग ही धर्मांतरण का शिकार होते थे लेकिन इस बार धर्मांतरण करने वाले लोगों में पढ़े लिखे डॉक्टर इंजीनियर और एमबीए तक करे हुए नौजवान हैं।

यहाँ कुछ कथित उदारवादी यह तर्क दे सकते हैं कि धर्म अथवा पंथ एक निजी मामला है और हर किसी को अपना धर्म चुनने का अधिकार है। इसलिए धर्मांतरण पर आपत्ति करना व्यर्थ की राजनीति है। तो प्रश्न यह उठता है कि मूक और बधिर बच्चे भी क्या उनकी इस परिभाषा के दायरे में आते हैं? प्रश्न यह भी कि अगर कोई एक व्यक्ति अपना धर्म अथवा पंथ बदलता है तो वो उसका निजी मामला हो सकता है लेकिन जब लगभग एक हज़ार लोग धर्मांतरण करें तो भी क्या वो निजी मामला रह जाता है? एक व्यक्ति की आस्था बदलना उसका निजी मामला हो सकता है लेकिन एक हज़ार लोगों की आस्था में परिवर्तन निजी मामला कतई नहीं हो सकता। क्योंकि आस्था में परिवर्तन के साथ जिस धर्मांतरण को अंजाम दिया जाता है वो कहानी का अंत नहीं एक सिलसिले की शुरुआत होती है। एक सुनियोजित षड्यंत्र जो शुरू तो होता है नाम बदलने के साथ लेकिन, व्यक्तित्व और विचार भी बदल देता है। जब कोई आदित्य अब्दुल्ला बनता है या बनाया जाता है तो सिर्फ नाम ही नहीं खान पान और पहचान भी बदल जाती है। उपासना पद्धति ही नहीं बदलती उसके त्योहार और उसकी आस्था भी बदल जाती है। अभी कुछ दिनों पहले ऐसा ही एक मामला मध्यप्रदेश में सामने आया था जब एक महिला की मृत्यु के बाद उसके बेटे ने हिंदू रीति रिवाज से उसका अंतिम संस्कार करने से मना कर दिया था क्योंकि उसने धर्मांतरण कर लिया

था। जाहिर है इस प्रकार की घटनाएं समाज पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। यही कारण है कि इस विषय में स्वामी विवेकानंद का कहना था कि एक हिंदू का धर्मांतरण केवल एक हिंदू का कम होना नहीं, बल्कि एक शत्रु का बढ़ना है। और शायद उनके इस कथन का उत्तरप्रदेश के इस मामले से बेहतर कोई और उदाहरण नहीं हो सकता। क्योंकि इस मामले को देखें तो घटना का मुख्य आरोपी उमर गौतम खुद धर्मांतरण से पूर्व श्याम प्रसाद सिंह गौतम था जिसने लगभग एक हज़ार लोगों के धर्मांतरण को अंजाम दिया। इस व्यक्ति का एक तथाकथित वीडियो सामने आया है जिसमें वो स्वीकार कर रहा है कि कैसे वो खुद धर्मांतरण करके श्याम प्रसाद सिंह गौतम से मौलाना उमर गौतम बना और कैसे उसने एक हज़ार लोगों का धर्मांतरण करके न जाने कितने ही सौरभ शर्मा को मोहम्मद सूफियान बनाया है।

इसे क्या कहा जाए कि भारत में धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के नाम पर जिस धर्मांतरण को अंजाम दिया जा रहा है उसी धर्मांतरण को इस्लामी देशों में गैर कानूनी माना जाता है। यह जानना रोचक होगा कि इस्लामी कानून पालन करने वाले कई इस्लामी देशों जैसे सऊदी अरब, सूडान, सोमालिया जोर्डन, इजिप्ट में पंथ परिवर्तन गैर कानूनी है और इसके लिए सख्त सज़ा का प्रावधान है। मालदीव में तो अगर कोई मुस्लिम समुदाय का व्यक्ति अपना पंथ बदलता है तो उसकी नागरिकता ही समाप्त हो सकती है।

कहने को भारत में भी धर्मांतरण रोकने के लिए कानून है जो गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, उत्तराखंड, झारखंड समेत देश के नौ राज्यों में लागू है। ओडिशा में तो यह 1967 से लागू है। लेकिन धर्मांतरण रोकने में यह कानून कितना कारगर है इस प्रकार की घटनाएं खुद इस बात की गवाही दे देती हैं। गवाही के साथ इस प्रकार की घटनाएं स्थिति की गंभीरता की ओर भी इशारा करती हैं। यह वाकई में चिंताजनक है कि स्वामी विवेकानंद और गाँधी जी जैसे व्यक्तित्व जिस विषय की गंभीरता को सालों पहले हमारे सामने ला चुके थे वो विषय आज पहले से भी अधिक गंभीर हो चुका है। स्पष्ट है कि कानून बनाना ही पर्याप्त नहीं है उसे कठोरता से लागू करना महत्वपूर्ण है।

जिस प्रकार हर सिक्के के दो पहलू होते हैं उसी प्रकार धर्मांतरण के भी दो पक्ष हैं। यह पक्ष तो हम सभी के सामने है कि किस प्रकार लोगों को बहला फुसलाकर हिंदू धर्म से उनका धर्मांतरण कराया जाता है। किंतु इसका दूसरा पक्ष यह है कि जिस हिंदू धर्म से लोगों का धर्मांतरण कराया जाता है वो हिंदू धर्म इस धरती का सबसे पुराना और सनातन धर्म है। उस सनातन धर्म के निशान विश्व के हर कोने में आज भी मौजूद हैं। रूस से लेकर रोम तक और अफ्रीका से लेकर इंडोनेशिया जहां आज विश्व की सर्वाधिक मुस्लिम आबादी है, तक के देशों के इतिहास में सनातन धर्म कभी उनकी संस्कृति का हिस्सा थी। इससे बड़ी बात क्या होगी कि विश्व का सबसे बड़ा अंकोरवाट मंदिर भारत में नहीं अपितु कंबोडिया में 162.6 हेक्टेयर भूमि में स्थित है। विश्व में दूसरा सबसे बड़ा मंदिर स्वामी नारायण अक्षरधाम अमेरिका में है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह सनातन धर्म के प्रति विश्व भर के लोगों का एक नैसर्गिक आकर्षण है। यही कारण है कि विश्व के विभिन्न भागों से लोग शाँति की खोज में इसी सनातन धर्म की शरण में आते हैं। सनातन धर्म को धर्मांतरण का सहारा नहीं लेना पड़ता। स्टीव जॉब्स, सिल्वेस्टर स्टेलोन, मार्क जुकरबर्ग, जूलिया रॉबर्ट्स जैसे हज़ारों लोग अपनी उसी नाम और पहचान के साथ सनातन धर्म को अपना सकते हैं। इसके लिए उन्हें ना तो अपना नाम बदलना पड़ता है। तो समझा जा सकता है कि जिन पंथों को अपने अस्तित्व को बचाने के लिए धर्मांतरण का सहारा लेना पड़ रहा है वो असलियत में कितनी कमजोर नींव पर खड़े हैं। ■

पश्चिम बंगाल में चुनाव बाद की हिंसा: कारण और निवारण

प्रणय कुमार
शिक्षा प्रशासक

"ध्रुवीकरण के कारण पश्चिम बंगाल में हिंसा हो रही है, लोग मारे जा रहे हैं, महिलाएँ दुष्कर्म की शिकार हो रही हैं। चुनाव के बाद छिटपुट हिंसा कहाँ नहीं होती! यह लोकतंत्र की जीत का जश्न है!"

ऐसा विश्लेषण या मत प्रकट करने वालों से यह सीधा सवाल पूछा जाना चाहिए कि यदि उनके सगे–संबंधियों में से किसी एक को भी ऐसी नारकीय यातनाओं से गुजरना पड़ता, यदि उनके किसी अपने को राज्य की सत्ता से असहमत होने के कारण प्राण गंवाने पड़ते, तिनका–तिनका जोड़कर बनाए गए घर को उपद्रवियों द्वारा तोड़ते–बिखेरते, ध्वस्त होते बेबस–चुपचाप देखना पड़ता, मारपीट, लूटखसोट, आगजनी का एकतरफ़ा शिकार होना पड़ता, क्या तब भी ऐसी हिंसा, नृशंसता, पाशविकता पर उनका यही (उपर्युक्त) मत, विश्लेषण या दृष्टिकोण रहता?

सोचकर देखें, यह सवाल भी चुभता सा प्रतीत होता है! सभ्य समाज ऐसी करतूतें तो क्या ऐसे सवालों के प्रति भी तैयार और सहज नहीं रहता! हम 'सामूहिक दुष्कर्म' जैसे शब्द सुन भी नहीं सकते, उन्होंने यह दारुण और मर्मांतक कष्ट भोगा है। क्या ऐसा बोलने से पूर्व इन विश्लेषकों–बुद्धिजीवियों को पल भर यह नहीं सोचना चाहिए कि उनकी बातों का क्या और कैसा असर पीड़ितों और उनके परिजनों के मन पर पड़ेगा? क्या इससे पीड़ित परिजनों की आत्मा छलनी नहीं हो जाएगी? क्या इससे आततायियों की अराजकता व मनोबल और नहीं बढ़ जाएगा? कुछ बातों का राजनीति से ऊपर उठकर खंडन करना चाहिए। पुरजोर खंडन। तब तो और जब स्वयं प्रदेश की मुख्यमंत्री चुनाव–प्रचार के दौरान सरेआम ये धमकियाँ दे बैठी हों कि "केंद्रीय सैन्य बल के जाने के पश्चात तुम्हें कौन बचाएगा?" कुछ बातों के लिए सभ्य एवं लोकतांत्रिक समाज में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। रक्तरंजित एवं राज्य–प्रायोजित हिंसा उनमें सर्वोपरि होनी चाहिए। ध्यातव्य है कि पत्रकारों का एक वर्ग प्रलोभन या विचारधारा की आड़ में एजेंडा चलाता रहा है। पर उनके साथ–साथ बौद्धिकता का क्षद्म दंभ पालने वाला, स्वयं को उदार एवं सहिष्णु घोषित करने वाला बुद्धिजीवियों का

एक समूह भी कम दोषी नहीं है। वह समूह भिन्न स्वर, भिन्न राग अलापने को अपना वैशिष्ट्य समझता रहा है। वह समूह देश की केंद्रीय सरकार को समय–असमय सहिष्णुता का पाठ पढ़ाता रहा है।

दूसरी ओर जुनूनी–मज़हबी–उपद्रवी भीड़ पल भर को भी यह सोचने को तैयार नहीं कि मनुष्य का मनुष्य हो जाना ही उसकी चरम उपलब्धि है, कि तमाम मत–मतांतरों के बीच भी एक–दूसरे से जुड़े रहने के लिए दोनों का मनुष्य होना ही पर्याप्त है, कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में अलग–अलग प्रकार की सामाजिक, राजनीतिक चेतना लोकतंत्र की ताक़त और खूबसूरती है, कमज़ोरी, बदसूरत, बदनीयती नहीं! जुनूनी–मज़हबी– उपद्रवी भीड़ हेतु किसी को निपटाने, किसी को निशाना बनाने के लिए उसका असहमत होना ही पर्याप्त है? प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि पश्चिम बंगाल में चुनाव के बाद हुई हिंसा में 14 से 18 वर्ष के किशोर वय के रोहिंग्याओं ने सर्वाधिक उत्पात–उपद्रव मचाए। इस आयु में तो सम्यक–संतुलित राजनीतिक चेतना भी विकसित नहीं हो पाती! फिर इन्हें मज़हब की कुनैन खिलाकर कौन पाल–पोस रहा है? इनके मन में भिन्न मतों–विश्वासों, उपासना–पद्धत्तियों, राजनीतिक मत–मतांतरों के प्रति कौन ज़हर भर रहा है? संवाद और सहमति की राह तय करने की बजाय क्या राजनीति में अपने विरोधियों के प्रति घृणा से भी आगे ऐसी हिंसा के लिए रंच मात्र स्थान होना चाहिए? उल्लेखनीय है कि जो निशाना बनाए जा रहे हैं, उनका हमलावरों से कोई पुश्तैनी विवाद नहीं था, न ही ज़मीन–ज़ायदाद–संपत्ति का ही कोई विवाद था। इस हिंसा में जिन आम नागरिकों को अपनी जान गंवानी पड़ी, उनका क़सूर केवल इतना था कि वे अपनी आशाओं–आकांक्षाओं के अनुरूप राज्य की व्यवस्था के सुचारु संचालन के लिए अपनी मर्ज़ी की एक सक्षम–सक्रिय सरकार चुनना चाहते थे, उनका क़सूर केवल इतना था कि उन्होंने लोकतांत्रिक–व्यवस्था में अपने मताधिकार को अपनी ताक़त समझा। चुनाव यदि लोकतंत्र का उत्सव है तो उसमें भागीदारी हमारी नागरिक– जिम्मेदारी। यदि वहाँ किसी एक को भी नागरिक–जिम्मेदारी के निर्वाह मात्र के लिए अपने प्राणों का मूल्य चुकाना पड़ा है तो यह लोकतंत्र के माथे पर लगा सबसे बड़ा कलंक है। और प्राण एक के नहीं, अनेक के जा रहे हैं, दुनिया एक की नहीं, असंख्य हिंदुओं की लुट रही है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे पश्चिम बंगाल लोकतांत्रिक भारत का नहीं, किसी इस्लामिक सत्ता का प्रदेश हो।

ध्रुवीकरण को कारण मानने–बताने वाले बड़े–बड़े चिंतक–विश्लेषक क्या यह बताने का कष्ट करेंगें कि कश्मीरी पंडित किस ध्रुवीकरण के कारण मारे और खदेड़ दिए गए? घाटी में किसने किसको उकसाया था? पाकिस्तान और बांग्लादेश में लाखों लोग किस ध्रुवीकरण के कारण हिंसा के शिकार हुए, मार डाले गए या धर्म–परिवर्तन को मजबूर हुए? इतिहास में घटे मोपला, नोआखली जैसे सैकड़ों नरसंहार भी क्या ध्रुवीकरण की देन थे? भारत–विभाजन में क्या उदार–सहिष्णु, सह–अस्तित्ववादी भारतीय समाज की कोई भूमिका थी? क्या तत्कालीन काँग्रेस और गाँधी भी ध्रुवीकरण कर रहे थे? जिनके विरुद्ध जिन्ना के एक आह्वान पर लगभग अधिकांश मुस्लिम एकजुट हो गए? क्या गाँधी केवल बहुसंख्यकों के नेता थे? यदि बहुसंख्यकों का ध्रुवीकरण कारण होता तो सबसे अधिक ख़तरा या भय तो भारत में रहने वाले बौद्धों, जैनों, सिखों, पारसियों और यहूदियों में होना चाहिए? ग़जनी, गोरी, अलाउद्दीन, औरंगजेब, नादिरशाह, तैमूर लंग जैसे तमाम हत्यारे शासक और आक्रांता क्या ध्रुवीकरण की प्रतिक्रिया में बहुसंख्यकों का नरसंहार कर रहे थे या बार–बार भारत पर आक्रमण कर रहे थे?

काशी, मथुरा, नालंदा, अयोध्या, सोमनाथ का विध्वंस क्या ध्रुवीकरण के परिणाम थे? यकीन मानिए, इससे निराधार अतार्किक एवं अनैतिहासिक तर्क और तथ्य कोई और नहीं हो सकता! बल्कि इस्लाम का पूरा इतिहास गैर–मतावलंबियों पर हिंसा और आक्रमण का रहा है। उसने इसे उपकरण के रूप में इस्तेमाल करते हुए दुनिया–जहान में अपना विस्तार किया है। इस विस्तार के क्रम में उसने मजहब के नाम पर अकारण लाखों–करोड़ों लोगों के खून बहाए। लाखों–करोड़ों लोगों पर अपने मत थोपे। ताक़त के बल पर मतांतरण कराया। इस्लाम धार्मिक सत्ता से अधिक एक राजनीतिक सत्ता है, जो प्रभुत्व स्थापित करने की वर्चस्ववादी भावना–प्रेरणा से संचालित है। जिसका अधिकतम भाईचारा अपने कौम तक सीमित है। दूसरों के संग–साथ चलने के लिए वह बिलकुल तैयार नहीं! दुनिया भर के मुसलमान अपने को पीड़ित दर्शाते हैं, पर गैर मतावलंबियों के साथ किए गए अत्याचार पर मौन साध जाते हैं। यहाँ तक कि इस्लाम को मानने वाले कुर्दों, बलूचों, शियाओं, यहूदियों, अहमदियों, आर्मेनियों के प्रति भी उनका असमान एवं अत्याचार भरा व्यवहार समझ से परे है। जब वे अपनों के प्रति असहिष्णु हैं तो दूसरों के साथ उनके व्यवहार की सहज ही कल्पना की जा सकती है।

सच तो यह है कि पश्चिम बंगाल में हो रही जानलेवा हिंसा का एक प्रमुख कारण वहाँ का जनसांख्यिकीय अनुपात है। पश्चिम बंगाल की 30 प्रतिशत अल्पसंख्यक आबादी राजनीति को उपकरण बनाकर 70 प्रतिशत बहुसंख्यकों पर दबाव बनाए रखना चाहती है। इस दबाव के पीछे आर्थिक, सामुदायिक, राजनीतिक निहितार्थ के साथ–साथ वर्चस्ववादी मानसिकता भी काम कर रही है। और राज्य की सत्ता दोषियों को सजा देने की बजाय वोट–बैंक को साधे रखने के चक्कर में मौन–मूक दर्शक की मुद्रा एवं भूमिका तक सीमित है। घोर आश्चर्य है कि जो विचारक, विश्लेषक, राजनीतिज्ञ दलगत राजनीति एवं विचारधारा से ऊपर उठकर पश्चिम बंगाल की हिंसा, अराजकता, लूटमार, आगजनी, दुष्कर्म जैसे अमानवीय कुकृत्यों पर एक बयान तक नहीं ज़ारी कर पाते, वे भी ऊँची–ऊँची मीनारों पर खड़े होकर कथित असहिष्णुता की दुहाई देते हैं और लोकतंत्र के स्वयंभू प्रहरी होने–दिखाने का दंभ भरते हैं। और हिंदू समाज भी संगठित होकर प्रतिरोध का स्वर उठाने के स्थान पर बेबस विभाजित होकर या तो हिंसा का शिकार हो रहा या पलायन कर रहा या पहचान और स्वाभिमान खोकर भी किसी तरह गुज़र–बसर कर रहा। वह नहीं जानता कि समाधान मौन–मूक बने रहने या आसान पलायन में नहीं, समाधान अस्तित्व बचाने के लिए संगठित शक्ति व संघर्ष में है। संगठित शक्ति खड़ी किए बिना स्थाई शांति कभी नहीं आ सकती। ■

भारतीय संस्कृति के मूल में है महिला सशक्तिकरण

अनुपमा अग्रवाल
पत्र लेखिका एवं समाज सेविका

वैदिक हिन्दू संस्कृति–सभ्यता, संस्कार एवं परम्पराओं के वाहक लाखों वर्ष पुराने वेदों में नारी को पुरुषों से उच्च स्थान दिया गया है। वेदों के अनुसार स्त्री यज्ञीय है अर्थात् यज्ञ के समान पूजनीय एवं पवित्र है, साथ ही ज्ञान एवं सुख समृद्धि देने वाली देवी, विदुषी, इंद्राणी जैसे अनेकों नामों से उसे सम्बोधित किया गया है। वैदिक काल में स्त्रियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति मजबूत और महत्वपूर्ण होने के साथ उसे परिवार और समाज दोनों स्थानों पर उचित सम्मान दिया जाता था। शिक्षा का समान अधिकार होने के कारण उसे समितियों और सभाओं में भाग लेने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। घुड़सवारी एवं शस्त्र चलाने में पुरुषों के समान दक्षता हासिल होने के साथ धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने के अतिरिक्त अनुष्ठान क्रियाएं सम्पन्न कराने वाले पुरोहितों एवं ऋषियों तक का दर्जा प्राप्त था। महिलाएं धर्म शास्त्रार्थ में पुरुषों के समान बढ़ चढ़ कर भाग लेती थीं इसका उदाहरण विदुषी गार्गी हैं जिन्होंने ऋषि याज्ञवल्क्य को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। नारियों को परिपक्व उम्र में स्वयंवर के द्वारा अपना वर चुनने की पूर्ण आजादी थी। वैदिक काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान या कहें उससे ज्यादा अधिकार, सम्मान एवं स्वतंत्रता प्राप्त थी। वेदों में अनेकों ऐसे श्लोक वर्णित हैं जो नारी के अध्ययन, अध्यापन, राजनीति, श्रवण एवं वाचन में समान अधिकार के पक्षधर होने के साथ समस्त सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यों में भाग लेने का वर्णन करते हैं। मैत्री, अपाला, गार्गी, विश्वआरा, रत्नावली, मुद्रा आदि कुछ ऐसी विदुषी नारियां हैं, जिनकी चर्चा वेदों में की गई है।

वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति अत्यंत सुदृढ़ और सशक्त थी। महिलाएं कृषि एवं बाजार हाट आदि के कार्यों में पुरूषों का हाथ बटाया करती थीं। गणिकाएं भी नृत्य, संगीत, श्रृंगार, गायन आदि में कुशल होती थीं। नृत्य व संगीत उनकी आजीविका के साधन थे, वे केवल मनोरंजन की सामग्री मात्र नहीं थीं वरन संगीत की उपासना के साथ राज्यों में युद्ध के भेदिये जैसे दुष्कर कार्यों के लिए भी समर्पित रहती थीं वे आय का एक भाग राज्य को कर के रूप में भी देती थीं। नारी द्वारा सूत कातना, वस्त्र बुनने आदि का उल्लेख भी इतिहास में मिलता है। 11वीं सदी से लेकर 18 वीं सदी के मध्य विदेशी आक्रमणकारियों एवं मुगलों के शासन काल में महिलाओं की जिंदगी बद्तर हो गई। उन पर अत्याचार होने लगे तथा अधिकारों का हनन होने के कारण उन्हें गुलामों की जिंदगी जीने को मजबूर होना पड़ा। इस काल में रानी लक्ष्मीबाई, जीजाबाई, चिन्नम्मा, बेगम हजरत महल, पद्मावती आदि कुछ ऐसी वीरांगनाएं हैं जिन्होंने अपनी बहादुरी, साहस एवं हिम्मत के बल पर स्वयं के स्वाभिमान को बचाये रखते हुए राष्ट्र की रक्षा हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। 19 वीं सदी में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पुनः महिलाओं की स्थिति में सुधार शुरू हुआ। शिक्षा की अनिवार्यता ने महिलाओं को न केवल घर की चारदीवारी से बाहर निकाला बल्कि समान अधिकारों के चलते महिलाओं को पुरुषों के बराबर लाकर खड़ा किया। शिक्षा के कारण महिलाएं रूढ़िवाद की कोठरी से बाहर निकल स्वयं अपने पैरों पर खड़े होने लगीं और कभी पुरूष को बैसाखी बनाकर चलने वाली महिलाएं स्वयं अपने बलबूते आसमान छूने लगीं।

वर्तमान परिदृश्य में महिलाएं न केवल घर परिवार को भलीभांति संभाल रही हैं बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी प्रतिभा के बल पर स्वयं को नए मुकाम पर स्थापित करने में भी सफल हो रही हैं। महिलाओं को उनकी प्रतिभा निखारने एवं आगे बढ़ाने में तत्कालीन मोदी सरकार की भी अहम भूमिका रही है। सरकार द्वारा वंचित बस्तियों की महिलाओं को आर्थिक रूप से सक्षम एवं स्वावलंबी बनाने के लिए विभिन्न योजनाएं चलाई जा रही हैं। शिक्षा के अतिरिक्त महिलाओं के चहुमुखी विकास को ध्यान में रखते हुए कौशल विकास योजना के तहत युवक युवतियों को निःशुल्क प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है तथा प्रशिक्षण के उपरांत अपना व्यवसाय शुरू करने के लिए बैंकों से कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराने की सरकार की योजना चालू है, ताकि घरों अथवा फैक्ट्री में कार्य करने वाली महिलाएं

आर्थिक शोषण से बच सकें और छोटे पैमाने पर घर से अपना व्यापार चालू कर सकें। महिला सशक्तिकरण को लेकर वर्तमान सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयास कोरोना काल में रंग लाते दिख रहे हैं। लॉकडाउन के समय जब आमजन घर की चारदीवारी के भीतर रहने को मजबूर था और काफी लोगों की नौकरी पर संकट आने के कारण रोजीरोटी छिन गई थी ।उस समय महिलाओं ने अचार, पापड़, मठरी, मास्क, राखी निर्माण व हस्तशिल्प सामग्री आदि का घर से निर्माण कर उसका ऑनलाइन व्यापार चालू कर न् केवल अपने परिवार का पेट पाला बल्कि स्वयं आत्मनिर्भर बन अब अन्य लोगों को रोजगार प्रदान कर रही हैं।

आज की नारी ने यह साबित कर दिया है कि वह कोमल है पर कमजोर नहीं। उसमें पन्नाधाय का त्याग है तो रानी लक्ष्मीबाई सा साहस भी, अवनि चतुर्वेदी सी बहादुरी है तो अरुणिमा सिंह जैसा साहस भी, कल्पना चावला व सुनीता विलियम्स जैसी अंतरिक्ष विजय करने की क्षमता है तो बछेंद्री पाल जैसी पर्वत फतह करने की हिम्मत भी, पी टी उषा जैसा जीत का जज्बा है तो लक्ष्मी शाह जैसी जीवटता भी, दीपा कर्माकर जैसा जुनून है तो सुरसम्राज्ञी लता मंगेशकर जैसी मधुरता भी, स्व. सुषमा स्वराज जैसी राजनीतिज्ञ है तो इंदिरा नूई जैसी सफल व्यवसायी भी। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्र में न जाने ऐसे कितने ही उदाहरण भरे पड़े हैं जो महिला सशक्तिकरण के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं जो ये दर्शाते हैं कि आज की नारी अबला नहीं सबला है जो विपरीत परिस्थितियों में भी सक्षम और सबल बन परिवार के साथ राष्ट्र की प्रगति,रक्षा और निर्माण में अपनी अहम भूमिका निभाने की हिम्मत रखती है। महर्षि दयानंद सरस्वती जी व स्वामी विवेकानंद जी का कथन था कि जब तक महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं होगा तब तक विश्व का कल्याण नहीं हो सकता, किसी भी पक्षी का एक पंख से उड़ना सम्भव नहीं है।

आज भारत सबसे तेज गति से आर्थिक तरक्की प्राप्त करने वाले देशों में शुमार हो गया है, इसमें कहीं न कहीं महिलाओं की भी अहम भागीदारी है, नारी की स्थिति में निरंतर सुधार राष्ट्र की प्रगति का मापदंड है। ■

धार्मिक पर्यटन की असीम संभावनाएं

डॉ. अखिलेश मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष (अर्थशास्त्र)
एस. डी. पी. जी. कॉलेज, गाजियाबाद

विश्व पर्यटन रिपोर्ट के अनुसार, धार्मिक पर्यटन अथवा आस्था पर्यटन (religious tourism or faith tourism) वह पर्यटन है जहां लोग तीर्थयात्रा, अवकाश (फैलोशिप) आत्मिक शांति, एवं ज्ञान पिपासा के उद्देश्य से जाते हैं। धर्म भारतीय संस्कृति एवं जीवन पद्धति का अभिन्न अंग है । सहस्त्राब्दियों से भारतीय ऋषि एवम मनीषी ज्ञान की खोज, प्रसार एवम जिज्ञासा की शांति हेतु न केवल देश भर के दुरूह एवम कंटक मार्ग से नियमित यात्राएं करते रहते थे बल्कि, अनेक स्थानों पर प्रतीक स्वरूप धार्मिक केंद्रों की स्थापना भी किया। यही स्थल बाद में पर्यटक स्थल के रूप में विकसित हुए जिनके प्रति आम जन मानस के प्रति अगाध श्रद्धा आज भी विद्यमान है। भारत में जन्म से मृत्यु तक के समस्त संस्कार अपने कुल, ग्राम, जनपद प्रदेश एवं कभी कभी अपनी भौगोलिक सीमा के बाहर संपन्न कराने की परंपरा रही है। जैसे–जैसे लोगों के प्रवजन अथवा पलायन हुआ लोग अपनी जड़ों से जुड़ने के लिए निरंतर इन स्थानों की ओर आकर्षित होते रहे। यही कारण है कि धार्मिक पर्यटन का भारत के कुल पर्यटन में आधे से अधिक का हिस्सा है।

उत्तर प्रदेश न केवल जनसँख्या की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य है बल्कि, इसके पास साहित्य, संस्कति, लोक कला, धार्मिक पर्यटन स्थलों की आगाध एवं समृद्ध थाती है। अयोध्या, काशी, मथुरा वृन्दावन, चित्रकूट, हस्तिनापुर, प्रयागराज, मिर्ज़ापुर, गोरखपुर, जैसे अनेको हिन्दू धार्मिक स्थलों की आज भी सजीव उपस्थिति है। ये न केवल प्रसिद्द पर्यटन स्थल है बल्कि, इन स्थानों के अपने अंतर्संबंध साहित्य संस्कृति की अविरल धारा को संजोये रहे है। उत्तर प्रदेश के अनेको धार्मिक स्थलों में से 'प्रयागराज कुम्भ' का नाम गिनीज बुक ऑफ़ वर्ल्ड रिकार्ड में दुनिया के सबसे सबसे बड़े मानवीय एकम धार्मिक समागम के रूप में प्रतिस्थापित है। 'प्रयागराज कुम्भ नगरी, गंगा, यमुना एवं सरस्वती के पावन सुरम्य त्रिवेणी संगम पर अस्थायी रूप से 50 दिन के लिए बसायी गयी जहाँ 2019 में देश विदेश से 54 करोड़ लोग एकत्र हुए। दिव्य कुम्भ प्रयाग 2019 एवं भारत तथा उत्तर प्रदेश सरकार के धार्मिक कोरिडोर पर तेजी से काम के कारण, दुनिया भर में उत्तर प्रदेश धार्मिक पर्यटन मैप पर बहुत तेजी से उभर रहा है। 9 नवम्बर 2019 को सुप्रीम कोर्ट के राम मन्दिर के फैसले एवम रिव्यु पिटीशन खारिज होने के बाद अयोध्या में निर्माणधीन भव्य राममंदिर ने जहां सदियों से संघर्षरत हिन्दू भक्तों की तपस्या पूरी की वहीं अयोध्या अब देश ही नहीं बल्कि, विश्व के लोगों को एक नए रूप में आकर्षित कर रहा है। अब यह सब मानने लगे है कि सदियों से उपेक्षित अयोध्या को बड़े अंतरराष्ट्रीय धार्मिक शहर के रूप में विकसित होने के समस्त गुण हैं।

'चरैवेति चरैवेति' भारतीय संस्कृति के मूलतत्वों में से एक प्रमुख तत्व है। पर्यटन अथवा प्रवास की इसी मूलभूत परंपरा के कारण, अनेको वैविध्यता के बावजूद, भारत न केवल उत्तर से दक्षिण, एवम पूर्व से पश्चिम तक एक सांस्कृतिक सूत्र में बंधा

रहा बल्कि, भारतीय संस्कृति एवम सभ्यता का विस्तार सुदूर पूर्व एवम मध्य एशिया तक पहुंचा। अतिथि देवो भव, वसुधैव कुटुम्बकम एवं सर्वधर्म समभाव की सदियों पुरानी प्राचीन परम्परा के कारण दुनिया भर के धर्म सम्प्रदाय एवं मतों के स्मृति चिन्ह इस पवित्र धरती पर न केवल मौजूद रहे बल्कि, पुष्पित एवं पल्लवित हुए। धर्मो के अंतरासंवाद की परम्परा के कई प्लेटफार्म इस पवित्र धरा पर सदियों से चले आ रहे हैं।

उदारीकरण, भूमंडलीकरण सूचना क्रांति, अधः संरचना के विस्तार एवं गुणवता उन्नयन तथा भारत की आर्थिक प्रगति के दौर में, निसंदेह दुनिया भर में भारत को जानने एवं समझने की उत्कंठा तेज हुई है। 2014 में भारत के यशस्वी प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने कार्यभार सँभालते ही पर्यटन के माध्यम से आय वृद्धि एवं रोजगार की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए खासतौर से धार्मिक एवं अध्यात्मिक पर्यटन के विस्स्तार एवं विकास को लेकर अनेको कदम उठाये है, जिनका अपेक्षित सकारात्मक परिणाम सामने आने लगे है। उदाहरनार्थ, जहाँ वर्ल्ड इकनोमिक फोरम द्वारा तैयार विश्व यात्रा एवं पर्यटन प्रतियोगिता सूचकांक (Travel and Tourism Competitive Index) में 140 देशो की सूची में 65वें स्थान पर था, वह 2017 में 40वें तथा 2020 में 34 स्थान पर आ गया है।

फिक्की की रिपोर्ट के अनुसार 2019 में अकेले तेलंगाना अवस्थिति तिरुपति बालाजी मंदिर में 1.26 करोड़ लोगो ने दर्शन किया जो कि दिल्ली मुंबई एवम कोलकाता की संयुक्त पर्यटकों की संख्या से अधिक है । इकोनॉमिक टाइम्स की रिपोर्ट के अनुसार सन 2019 अयोध्या में कुल 2.1 करोड़ देशी एवम विदेशी पर्यटकों आए जो कि सन 2018 की तुलना में 10 लाख से अधिक है। इतना ही नही मथुरा एवम वृंदावन के युग्म शहरों में पर्यटकों की संख्या 2.42 करोड़ रही जो कि पिछले वर्ष 2.24 (करोड़) की तुलना में 18 लाख से अधिक है। यह तो मात्र बानगी भर है। देश के भीतर ऐसे लाखो स्थान हैं जिनकी जानकारी वहां के स्थानीय नागरिको को भी बेहतर ढंग से नही है। इससे हम न केवल अपना गौरव शाली इतिहास भूल रहे है बल्कि, इन स्थानों की उपेक्षा से हम एक बड़े आर्थिक अवसर की सम्भावना से भी वंचित हो रहे हैं। अब तक सरकारों के ध्यान, केवल एतिहासिक मोनुमेंट्स के माध्यम से विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने की ओर रहा था किन्तु, 2014 के बाद से सरकार नें अपना ध्यान गुणवत्ता परक एवं आधुनिक अधः संरचना के विकास के माध्यम से आय, रोजगार एवं आर्थिक विकास को बढ़ाने पर केन्द्रित किया है। उत्तर प्रदेश सरकार के द्वारा श्री 'रामपथगमन' मथुरा–वृन्दावन, माँ विन्ध्य वासिनी धर्मिक स्थल कोरिडोर एवं केंद्र सरकार की काशी के पुनरोद्धार की योजनाये उत्तर प्रदेश के पर्यटन उद्योग को नई उर्जा एवं गति देने में मील का पत्थर साबित होंगी।

हाल ही में अयोध्या में अंतरराष्ट्रीय एयरपोर्ट बनाने की स्वीकृति, अंतरराष्ट्रीय सुविधाओं वाले रेलवे स्टेशन और बस स्टैंड का निर्माण के साथ साथ सरकार द्वारा आधुनिकतम परिवहन, के साथ साथ स्थानीय स्तर पर एसी बसें, तेजस, शताब्दी की सुविधाओं वाली रेलों को अयोध्या से जोड़ने की पहल के कारण ओवरनाईट पर्यटकों की संख्या में तेजी से विस्तार की पहल स्वागत योग्य कदम है। अयोध्या से लखनऊ, गोरखपुर, प्रयागराज और बनारस जो करीब 200 किलोमीटर के दायरे में हैं तथा ऐतिहासिक एवम धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, को जोड़कर एक सर्किट बनाने हेतु एक समग्र योजना पर समयबद्ध एवम चरणबद्ध कार्य प्राथमिकता के आधार पर होना चाहिए। सरकार का अयोध्या से श्रीलंका तक राम पथ गमन कॉरिडोर भी धार्मिक पर्यटन एवं आर्थिक विकास के लिए एक मील का पत्थर है जो विश्व लुभावन है। ■

प्राचीन भारत में विज्ञान एवं तकनीकी संस्कृति

प्रोफेसर डॉ. हरेन्द्र सिंह
शिक्षाविद, शैक्षिक प्रशासक एवं चिन्तक

व्यावहारिक और औद्योगिक कलाओं और प्रयुक्त विज्ञानों से संबंधित अध्ययन या विज्ञान का समूह को तकनीकी कहा जाता है। अधिकांश लोग तकनीकी और अभियान्त्रिकी तथा प्रौद्योगिकी शब्दों को एक ही मानते हैं। यह सर्वविदित है कि विज्ञान की दृष्टि से प्राचीन भारत की उपलब्धियां विस्मयकारी थीं। भारत के वैज्ञानिकों ने विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में प्राचीनकाल से ही अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। हमारे भारत का अतीत ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी कि समृद्धशाली संस्कृति से परिपूर्ण रहा है। हम भारतवासी प्राचीनकाल से ही सम्पूर्ण संसार का नेतृत्व करते आये हैं। भारत में विज्ञान का उद्भव ईसा से 3000 वर्ष पूर्व से माना जाता है। हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त सिंधु घाटी के प्रमाणों से वहाँ के लोगों की वैज्ञानिक दृष्टि तथा वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोगों का पता चलता है। हमारे प्राचीन ग्रंथों, यथा– वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि के अध्ययन से ज्ञात होता है कि राडार प्रणाली (रूपार्कण रहस्य), गौमूत्र को सोने में बदलने की तकनीक, मिसाइल तकनीक, कृष्ण विवर का सिद्धांत, सापेक्षता सिद्धांत एवं क्वांटम सिद्धांत, विमानों की तकनीकी, दूरस्थ स्थान पर घटित घटनाओं को देखने की तकनीक, समय विस्तारण सिद्धांत, अनिश्चितता का सिद्धांत, संजीवनी औषधि आदि का सम्पूर्ण ज्ञान हमारे प्राचीन काल के विद्वानों को था। हमें अपने पूर्वजों के उच्च कोटि के तकनीकी ज्ञान एवं विज्ञान पर बेहद गर्व है। उनकी उपलब्धियां हमें अपने गौरवपूर्ण स्वर्णिम इतिहास की झलक दिखाती हैं और हमें यह भी गर्व के साथ अनुभव कराती हैं कि हमारे पूर्वज विज्ञान एवं तकनीकी की दृष्टि से अत्यंत ही उन्नत रहे हैं।

पांचवी सदी में प्राचीन भारत के महान ज्योतिषविद् और गणितज्ञ आर्यभट (476 –550 ईसा पूर्व) ने बता दिया था कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है, उन्होंने खगोल शास्त्र के दो ग्रंथो– आर्यभट्टिया और आर्यभट्ट सिद्धांत, इन ग्रंथों में पहली बार बताया की पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है, तथा यही कारण है कि सभी तारे पश्चिम की ओर जाते हुए दिखाई देते हैं। आर्यभट ने लिखा कि पृथ्वी एक गोला हे जिसका व्यास 39967 किमी. है। आर्यभट ने ही चंद्रमा के चमकने का कारण बताया और कहा कि यह सूर्य के प्रकाश की वजह से चमकता है। आर्यभट ने भूभ्रमण का सिद्धांत प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार पृथ्वी अपने अक्ष पर घूर्णन करती है। इसका विवरण आर्यभट्ट गोलपाद में निम्न प्रकार से देते हैं–

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलम्विलोमंगयद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायां।।

''लंका में स्थित मनुष्य नक्षत्रों को उल्टी ओर (पूर्व से पश्चिम) जाते हुए देखता है उसी भांति से चलती नाव में बैठे मनुष्य को किनारें स्थित वस्तुओं की गति उल्टी दिशा में प्रतीत होती है।''

पृथूदकस्वामी आर्यभट की एक आर्या के बारे में लिखते हैं–

भपंजरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्य प्राति दैविसिकौ।
उदयास्तमयौ संपादयति नक्षत्रग्रहाणाम्।।

''तारामंडल स्थिर है और पृथ्वी अपनी दैनिक घूर्णन गति से नक्षत्रों तथा ग्रहों को उदय एवं अस्त करती है।''

वे तारों और ग्रहों की गति को वास्तविक गति के रूप में वर्णित करते हुए बताते हैं–

उदय-अस्तमय-निमित्तम् नित्यम् प्रवहेण वायुना क्षिप्तस्।
लंका-सम-पश्चिम-गस् भ-पंजरस् स-ग्रहस् भ्रमति।। (आर्यभट्रीय गोलपाद 10)

'उनके उदय और अस्त होने का कारण इस तथ्य की वजह से है कि प्रोवेक्टर हवा द्वारा संचालित गृह और एस्टेरिस्म्स चक्र श्रीलंका में निरंतर पश्चिम की तरफ चलायमान रहते हैं।"

लंका (श्रीलंका), यहाँ भूमध्य रेखा पर एक सन्दर्भ बिन्दु है, जिसे खगोलीय गणना के लिए मध्याह्न रेखा के सन्दर्भ में समान मान के रूप में ले लिया गया था।

5वीं शताब्दी में आर्यभट्ट से लेकर 12वीं शताब्दी में भास्कर द्वितीय तक के काल को सिद्धांतिक काल के नाम से जानते हैं। इस काल में हमारे देश में आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, महावीर, नागार्जुन जैसे महान वैज्ञानिक हुए। विज्ञान एवं तकनीकी की दृष्टि से यह काल परम वैभव का काल माना जाता है। सिद्धांतिक काल तक भारतीय तकनीकी एवं विज्ञान मध्य एशिया के देशों से होकर यूरोप तक पहुंच चुका था। इसी से कालान्तर में शक्ति तकनीक का विकास हुआ। न्यूटन से शताब्दियों पूर्व भास्कर ने पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का पता लगा लिया था। भास्कर ने बताया कि पृथ्वी का कोई आधार नहीं है और यह केवल अपनी शक्ति से स्थिर है। गुरुत्वाकर्षण को स्पष्ट करते हुए वे लिखते है– 'पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है जिसके द्वारा बलपूर्वक वह सभी वस्तुओं को अपनी ओर खींचती है । वह जिसे खींचती है वह वस्तु भूमि पर गिरती हुई प्रतीत होती है।' वे शून्य तथा अनन्त का निहितार्थ भलीभांति समझते थे। गणित द्वारा उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि शून्य वस्तुतः अनन्त है जो कभी भी विभाजित नहीं होता।

वैदिक साहित्य के चार प्रमुख अंगों– वेद (ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद), ब्राह्मण–ग्रंथ, उपनिषद तथा वेदांग से हमें वैदिक–कालीन समाज की वैज्ञानिक तथा तकनीकी उपलब्धियों की जानकारी प्राप्त होती है। वैदिक काल की कोई भी लिपि नहीं थी, इसलिए वेदों को श्रुति कहा गया है। प्राचीन भारत में इन्हें रट–रटकर मौखिक रूप से प्रसारित करने की परम्परा थी। वैदिक ऋषियों को सूर्य, चन्द्र, ग्रहों एवं तारों की गतिविधियों का अच्छा ज्ञान था। ऋग्वेद में 12 महीनों का चन्द्रवर्ष माना गया

है। वैदिक ऋषियों को सात ग्रहों, 27 नक्षत्रों, खगोलीय परिघटना उत्तरायण– दक्षिणायन का ज्ञान था। वैदिक ऋषियों को ग्रहणों की बारंबारता का ज्ञान था।

ब्रह्मांड की उत्पत्ति तथा संचालन जिन नियमों से होते हैं, ऋग्वेद में उसे ऋत् की संज्ञा दी गयी है। ऋग्वेद का नासदीय सूक्त वैदिक ऋषियों के ब्रह्मांड की उत्पत्ति से सम्बन्धित तर्कसंगत चिंतन का परिचय देता है। वैदिक ज्योतिष का सार महर्षि लगध के वेदांग ज्योतिष को माना जाता है। यह भारत की पहली ज्ञात ज्योतिष की पुस्तक है। वेदांग ज्योतिष में काल गणना तथा पंचांगों के संबंध में विस्तृत वर्णन मिलता है।

वैदिककालीन चिकित्सा के बारे में हमें सर्वाधिक जानकारी अथर्ववेद से प्राप्त होती है। इसमें सिरदर्द, यक्ष्मा (टीबी), बुखार आदि बीमारियों का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में हमें जड़ी–बूटियों से बीमारियों के इलाज के बारे में जानकारी मिलती है।भारत की स्वदेशी चिकित्सा प्रणाली को आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेद शब्द का शाब्दिक अर्थ है– लंबी उम्र प्राप्त करने का विज्ञान। प्राचीनकाल में आयुर्वेद को विकसित करने में अनेक ऋषियों का योगदान है। प्राचीन भारत में अत्यधिक मात्रा में चिकित्सा साहित्य की रचना हुई थी, परंतु समय की मार से जो दो प्रमुख ग्रंथ सुरक्षित रह गए वे हैं– चरकसंहिता, सुश्रुत संहिता इन दोनों ग्रंथों में तत्कालीन चिकित्सा ज्ञान का संकलन है। चरक संहिता में आठ खंड तथा 120 अध्याय हैं, यह मुख्यतः काय–चिकित्सा का ग्रंथ है तथा सुश्रुत संहिता मुख्यतः शल्य चिकत्सा का ग्रंथ है। सुश्रुत संहिता में सर्जरी में उपयोग होने वाले उपकरणों की विस्तृत जानकारी है। वास्तव में प्लास्टिकसर्जरी के आदि–आविष्कर्ता महर्षि सुश्रुत हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार भारत में 1600 ई. पू. में सुश्रुत और उनके शिष्य कटी नाक, ओंठऔर कान की प्लास्टिक सर्जरी करने में सक्षम थे। कटी–टूटी नाक की प्लास्टिक सर्जरी, जिसे राइनोप्लास्टी कहते हैं, का आदि–आविष्कर्ता सुश्रुत को मानें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। वस्तुतः सुश्रुत ने आँखों के मोतियाबिंद का जाला हटाने का शल्य–कर्म खोज लिया था। ■

'अखण्ड भारत' सपना नहीं! एक संकल्प है

डॉ. प्रदीप कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर दिल्ली विश्वविद्यालय

15 अगस्त का दिन कहता–

आज़ादी अभी अधूरी है।
सपने सच होने बाक़ी हैं,
रावी की शपथ न पूरी है

पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेई जी की उक्त कविता के संदर्भ में अखंड भारत विषय पर लेख प्रस्तुत कर रहा हूं।

भारत के अविभाज्य स्वरूप को अखण्ड भारत कहा जाता है। कुछ लोगों को अखण्ड भारत शब्द प्रयोग समझ नहीं आता है, किन्तु ये एक सर्व सामान्य जानकारी की बात है कि पिछले लगभग बारह सौ वर्षों में भारतवर्ष या हिंदुस्तान की सीमायें लगातार सिकुड़ती गयी और जहाँ भी हिन्दुओं की आबादी घटी है वही भाग भारत से अलग हो गया। प्राचीन काल में भारत बहुत विस्तृत था। राजनीतिक रूप से इस "जम्बुद्वीप" क्षेत्र में अनेक राज्य शामिल थे; जो हैं– अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, बर्मा, थाइलैंड, कंबोडिया और मलेशिया आदि। लेकिन अलग–अलग राज्य होते हुए भी इनमें सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के तत्व मौजूद थे। आज जिसे म्यांमार (ब्रह्मदेश) कहते हैं वह 1935 में ही अलग हो गया था, वहीं पाकिस्तान, बांग्लादेश को 1947 में अंग्रेजों ने विभाजित किया।

अखण्ड भारत महज एक सपना नहीं! श्रद्धा है, निष्ठा है, एक संकल्प है। जिन आंखों ने भारत को भूमि से अधिक माता के रूप में देखा हो, जो स्वयं को इसका पुत्र मानता हो, जो प्रातः उठकर "समुद्रवसने देवी पर्वतस्तन मंडले, विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यम् पादस्पर्शं क्षमस्वमे कहकर उसकी रज को माथे से लगाता हो, वन्देमातरम् जिनका राष्ट्रघोष हो, ऐसे असंख्य अंतःकरण मातृभूमि के विभाजन की वेदना को कैसे भूल सकते हैं? अखण्ड भारत के संकल्प को कैसे त्याग सकते हैं? हमें लक्ष्य के शिखर पर पहुंचने के लिये यथार्थ की कंकरीली–पथरीली, कहीं कांटे तो कहीं दलदल, कहीं गहरी खाई तो कहीं रपटीली चढ़ाई से होकर गुजरना ही होगा।

आज भारत के पास सैन्य सामर्थ्य है, राजनीतिक इच्छाशक्ति भी है, लेकिन क्या पाकिस्तान पर जीत से अखण्ड भारत बन सकता है? जब लोगों में मनो–मिलन होता है, तभी राष्ट्र बनता है। अखण्डता का मार्ग सांस्कृतिक है, न कि राजनैतिक। सैन्य कार्रवाई या आक्रमण इसका हल नहीं है। देश का नेतृत्व करने वाले नेताओं के मन में इस संदर्भ में सुस्पष्ट धारणा आवश्यक है कि भारत की अखण्डता का आधार भूगोल से ज्यादा संस्कृति और इतिहास में निहित है।

14 अगस्त 1947 को देश का विभाजन हुआ था और पाकिस्तान नाम से एक अलग देश का निर्माण हुआ था। 15 अगस्त 1947 को भारत का स्वतंत्रता दिवस मनाया जाता है। इस दिन हमें आजादी मिली और वर्षों की परतंत्रता की रात समाप्त हो गयी, किन्तु स्वातंत्र्य के आनंद के साथ–साथ मातृभूमि के विभाजन का गहरा घाव भी सहन करना पड़ा। 1947 का विभाजन पहला और अन्तिम विभाजन नहीं है। भारत की सीमाओं का संकुचन उसके काफी पहले शुरू हो चुका था। सातवीं से नवीं शताब्दी तक लगभग ढाई सौ साल अकेले संघर्ष करके हिन्दू अफगानिस्तान इस्लाम के पेट में समा गया। हिमालय की गोद में बसे नेपाल, भूटान आदि जनपद अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण मुस्लिम विजय से बच गये। अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की

रक्षा के लिये उन्होंने राजनैतिक स्वतंत्रता का मार्ग अपनाया पर अब वह राजनैतिक स्वतंत्रता, संस्कृति पर हावी हो गयी है। श्रीलंका पर पहले पुर्तगाल, फिर हॉलैंड और अन्त में अंग्रेजों ने राज किया और उसे भारत से पूरी तरह अलग कर दिया, किन्तु मुख्य प्रश्न तो भारत के सामने है। तेरह सौ वर्ष से भारत की धरती पर जो वैचारिक संघर्ष चल रहा था, उसी की परिणिति 1947 के विभाजन में हुई। पाकिस्तानी टेलीविजन पर किसी ने ठीक ही कहा था कि जिस दिन आठवीं शताब्दी में पहले हिन्दू ने इस्लाम को कबूल किया, उसी दिन भारत विभाजन के बीज पड़ गये थे।

15 अगस्त 1947 को महर्षि अरविन्द ने कहा था कि नियति ने इस भारत भूखण्ड को एक राष्ट्र के रूप में बनाया है, और ये विभाजन अस्थायी है। देश के लोगों को संकल्प लेना चाहिए कि चाहे जैसे भी हो और चाहे कोई भी रास्ता अपनाना पड़े, विभाजन समाप्त होंकर पुनः अखण्ड भारत का निर्माण होना चाहिए। इसीलिए देश में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा प्रति वर्ष 14 अगस्त को अखण्ड भारत दिवस मनाया जाता है और देश को पुनः अखण्ड और सम्पूर्ण बनाने का संकल्प करोड़ों स्वयंसेवकों द्वारा देश भर में मनाया जाता है।

इसे तो स्वीकार करना ही होगा कि भारत का विभाजन हिन्दू–मुस्लिम आधार पर हुआ। पाकिस्तान ने अपने को इस्लामी देश घोषित किया। वहां से सभी हिन्दू–सिखों को बाहर खदेड़ दिया। अब वहां हिन्दू–सिख जनसंख्या लगभग शून्य है। भारतीय सेनाओं की सहायता से बांग्लादेश स्वतन्त्र राज्य बना। भारत के प्रति कृतज्ञतावश चार साल तक मुजीबुर्रहमान के जीवन काल में बंगलादेश ने स्वयं को पंथनिरपेक्ष राज्य कहा किन्तु एक दिन मुजीबुर्रहमान का कत्ल करके स्वयं को इस्लामी राज्य घोषित कर दिया। विभाजन के समय वहां रह गये हिन्दुओं की संख्या 34 प्रतिशत से घटकर अब 10 प्रतिशत से कम रह गई है और बांग्लादेश भारत के विरुद्ध आतंकवादी गतिविधियों का मुख्य केन्द्र बन गया है। करोड़ों बांग्लादेशी घुसपैठिये भारत की सुरक्षा के लिये भारी खतरा बन गये हैं।

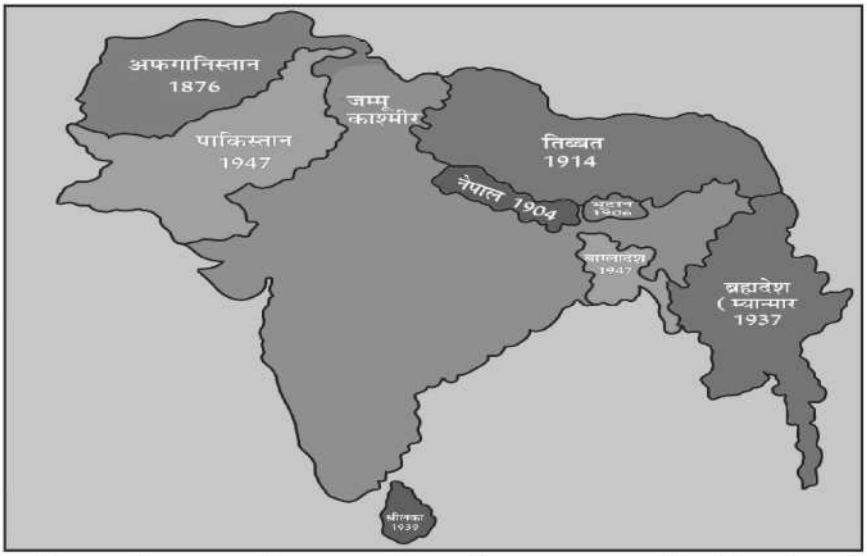

विभाजन के पश्चात् खण्डित भारत की अपनी स्थिति क्या है? ब्रिटिश संसदीय प्रणाली के अन्धानुकरण ने हिन्दू समाज को जाति, क्षेत्र और दल के आधार पर जड़मूल तक विभाजित कर दिया है। पूरा समाज भ्रष्टाचार की दलदल में आकंठ फंस गया है। हिन्दू समाज की बात करना साम्प्रदायिकता है और मुस्लिम कट्टरवाद व पृथकतावाद की हिमायत करना सेकुलरिज्म। अनेक छोटे–छोटे राजनीतिक दलों में बिखरा हिन्दू नेतृत्व सत्ता के कुछ टुकड़े पाने के लोभ में मुस्लिम वोटों को रिझाने में लगा है।

देश को फिर से एक करने के लिये जिन कारणों से मनों में दरार पैदा होती है, उन कारणों को दूर करना आवश्यक है। यह आसान काम नहीं है। धार्मिक, राजनीतिक और अंतर्राष्ट्रीय शक्तियां सभी बाधाओं के रूप में खड़ी हैं, लेकिन क्या मुसलमानों और हिन्दुओं में सांस्कृतिक एकता का कोई प्रवाह है? हिन्दुओं और मुसलमानों के पुरखे एक हैं, उनका वंश एक है। ये मुसलमान अरबी, तुर्की या इराकी नहीं हैं। हिन्दू एक जीवन–पद्धति है और इसे पूर्णतः त्यागना हिन्दू से मुसलमान बने आज के मुसलमानों के लिये भी संभव नहीं है।

खंडित भारत में एक सशक्त, समरसतापूर्ण, तेजोमयी राष्ट्रजीवन खड़ा करके ही अखण्ड भारत के लक्ष्य की ओर बढ़ना संभव होगा। अखण्ड भारत का संकल्प प्रति वर्ष दोहराना इसलिए भी आवश्यक है ताकि हमें यह स्मरण रहे कि हमें पुनः जुड़कर एक होना है। हमारे सामने यहूदी राष्ट्र इजराईल का उदहारण है। लगभग दो हज़ार वर्षों तक दुनिया के सत्तर देशों में विस्थापित जीवन बिताते हुए और हर प्रकार के अत्याचार और भेदभाव का शिकार बनने (भारत को छोड़कर) के बाद बीसवीं सदी के प्रारंभ में कुछ यहूदी नेताओं ने प्रतिवर्ष एक स्थान पर मिलने का क्रम प्रारंभ किया और अपने यहूदी राष्ट्र को पुनः स्थापित करने का संकल्प दोहराने का क्रम बनाया। उनका ये संकल्प लगभग आधी सदी से भी कम समय में पूरा हो गया और नवम्बर 1947 में यहूदी राष्ट्र इजराईल का उदय हुआ।

अतः हम सब को आज 14 अगस्त को इस बात का संकल्प लेना होगा कि इस प्राचीन राष्ट्र को पुनः अपना खोया हुआ गौरव प्राप्त कराने और एक संगठित, समृद्ध, शक्तिशाली एवं सामर्थ्यवान राष्ट्र का लक्ष्य प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ाना ही हमारी नियति है। जिसे अपने पुरुषार्थ से हमें प्राप्त करना है। लेख का समापन भी वाजपेई जी की कविता से कर रहा हूं

दिन दूर नहीं खंडित भारत को पुनः अखंड बनाएँगे।

गिलगित से गारो पर्वत तक आजादी पर्व मनाएँगे।।

उस स्वर्ण दिवस के लिए आज से कमर कसें बलिदान करें।

जो पाया उसमें खो न जाएँ, जो खोया उसका ध्यान करें।।

।। भारत माता की जय।। ■

भारत में दान संस्कृति की एक झलक

डॉ. मनमोहन सिंह शिशौदिया
भौतिकी विज्ञान विभाग
गौतमबुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा

ब्रह्मांड की उत्पत्ति के सिद्धांत पर भले ही दुनिया आजतक एकमत न हो, परन्तु इस यथार्थ को सभी स्वीकारते हैं कि ब्रह्माण्ड के छोटे से हिस्से में सिमटी पृथ्वी पर जन्म लेने वाला हर मनुष्य इस गृह के अल्पकालीन प्रवास के दौरान भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि प्राकृतिक एवं कृत्रिम विषमताओं का सामना करता है। मूल रूप से दान का उदगम भी कहीं न कहीं इन्हीं विषमताओं में निहित है। यदि दुनिया में ये विषमताएं न होतीं तो शायद ही दान शब्द दुनिया के किसी शब्दकोष में होता। भारतवर्ष में दानवृत्ति को मनुष्य के सर्वोच्च नैतिक गुणों में से एक माना गया है और विभिन्न धर्मग्रंथों में इसका वर्णन किया गया है। दान देने के भाव को समझाते हुए भगवद्गीता में कहा गया है कि, 'दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे, देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्' अर्थात् 'देश, काल और पात्र को ध्यान में रखते हुए, प्रत्युपकार न करने वाले व्यक्ति को निःस्वार्थ भाव से दिया गया दान ही सच्चा दान है'। ऋग्वेद में भी धन कमाने के साथ ही दान देने पर जोर देते हुए कहा गया है कि, "शतहस्त समाहर सहस्त्र हस्त सं किर'' अर्थात 'सौ हाथों से कमाओ और हजारों हाथों से दान करो'। वहीं दान देने के लिए प्रेरित करते हुए श्रीरामचरितमानस में महाकवि तुलसीदास जी ने कहा है कि, 'तुलसी पंछिन के पिये, घटे न सरिता–नीर। दान दिये धन ना घटे, जो सहाय रघुवीर।।' अर्थात् 'जिस तरह पक्षियों के पीने से नदी का पानी कम नहीं होता उसी तरह दान देने से मनुष्य का धन नहीं घटता'। दानवृति से हर नर में नारायण देख एकात्म स्थापित करने तथा समानता, सदाचार, समरसता, संवेदनशीलता, साहचर्य, सद्भावना, विश्व–कल्याण जैसे गुणों को 'मनसा–वाचा–कर्मणा' धारण करने की प्रेरणा मिलती है। भारतीय जनमानस की आधारभूत सोच रही है कि अपने आस–पास कोई भी भूखा–प्यासा न रहे, ठण्ड से न ठिठुरे, गर्मी से व्याकुल न हो, एवं खुद को असहाय एवं अकेला न समझे। भारतीय संस्कृति में निहित ऐसे ही संस्कारों की परिणति असंख्य भारतीयों द्वारा विद्यालय, अस्पताल, गौशाला, सराय, धर्मशाला, पूजास्थल, स्मारक आदि बनवाने, छात्रवृति देने, वृक्षारोपण करने, अन्न, वस्त्र दान करने, लोकोपकार हेतु जमीन एवं भवन उपलब्ध कराने, कुएं खुदवाने, प्याऊ लगवाने जैसे कार्यों के रूप में हुई है।

दुनिया की सबसे लम्बी कविता के रूप में स्थापित महर्षि वेदव्यास रचित भारतीय महाकाव्य 'महाभारत' में यक्ष के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए युधिष्ठिर कहते हैं, 'मृत्यु के नजदीक पहुंचे मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ मित्र 'दान' है एवं वही दान उत्तम है जो इसके सर्वश्रेष्ठ उपयोग करने वाले को दिया जाये।' प्राचीन भारतीय ग्रंथों में ऐसे अनगिनित प्रसंग हैं जब लोगों ने समाज एवं संस्कृति की रक्षा के लिए न केवल धन–संपत्ति बल्कि अपने प्राण तक भी सहर्ष दान में दे दिए। महर्षि दधीचि का नाम भला कौन भूल सकता है जिन्होंने लोक–कल्याण के लिए अपना शरीर दान करने में भी संकोच नहीं किया। कहा जाता है कि, एक बार जब देवताओं के दिव्यास्त्र भी दानवराज वृत्रासुर को युद्ध में नहीं हरा सके और देवताओं ने स्वर्ग से भागकर भगवान विष्णु से सुरक्षा की गुहार लगाई, तो उन्होंने महर्षि दधीचि की तप–संचित अस्थियों से बने अस्त्र को ही वृत्रासुर संहार का एकमात्र उपाय बताया। जब देवराज इंद्र ने संकोच करते हुए भगवान विष्णु द्वारा सुझाये उपाय को महर्षि दधीचि को बताया तो उन्होंने अपने जीवन पर लोकोपकार को प्राथमिकता देते हुए अस्थियां दान देने के लिए सहर्ष शरीर त्याग दिया। अंततः देवशिल्पी विश्वकर्मा द्वारा महर्षि दधीचि की अस्थियों से बनाये गए अस्त्र से वृत्रासुर का संहार कर देवताओं ने पुनः स्वर्ग को प्राप्त किया। आज विश्वास करना कठिन होगा कि कोई व्यक्ति जानते हुए ऐसी वस्तु दान कर दे जिसके पास रहते हुए न उसकी हार संभव हो और न ही मृत्यु। महाभारत काल में कवच–कुण्डल के साथ जन्मे महारथी कर्ण का नाम ऐसे ही दानवीरों में आता है जिसने यह जानते हुए भी कवच–कुण्डल दान देने में संकोच नहीं किया कि इन्हें मांगने वाले कोई और नहीं बल्कि उसके प्रधान शत्रु अर्जुन के पिता देवराज इंद्र हैं। भारतीय संस्कृति में उसी दान को महत्वपूर्ण माना गया है जो साधारण नहीं बल्कि असाधारण परिस्थितयों में दिया जाये। इसे पुष्ट करने वाले प्रसंग में जब एक याचक भारी बरसात के बीच अपने हवन के लिए युधिष्ठिर से चन्दन की सूखी लकड़ियां दान में मांगता है तो जंगल एवं वनों की लकड़ियों के गीला होने के कारण वह उसे नहीं दे पाए। भगवान कृष्ण की सलाह पर कर्ण के पास जाकर भी वही चन्दन की सूखी लकड़ी मांगने पर कर्ण भारी बरसात की असाधारण परिस्थितयों में अपने महल के खिड़की–दरवाजों में लगी चन्दन की लकड़ी निकालकर याचक को दान देना सुनिश्चित करता है। ऐसे ही दान का संकल्प पूरा करने के लिए अयोध्या के प्रसिद्ध इक्ष्वाकुवंशी राजा हरिशचंद्र अपना राजपाठ ऋषि विश्वामित्र को दान कर स्वयं डोम का नौकर बन शमशान में कर वसूली की नौकरी करते हैं और शुल्क अदा न करने पर अपनी पत्नी तारावती को अपने ही पुत्र रोहिताश के अंतिम संस्कार की अनुमति न देकर, 'चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार, पै दृढ श्री हरिश्चन्द्र का टरै न सत्य विचार' को समाज में स्थापित करते हैं। इसी तरह राजा बलि ने वामन रूप में आये भगवन विष्णु को तीन पग भूमि दान देने के अपने संकल्प को पूरा करने के लिए पृथ्वी एवं स्वर्ग के बाद तीसरे पग में अपने मस्तक को

ही नपवा दिया।

सातवीं शताब्दी में सम्राट रहे हर्ष का नाम भी महान दानवीरों की श्रेणी में आता है। वह हर 5 साल बाद अपनी कमाई जनता को दान कर दिया करते थे। हालिया अध्ययन के अनुसार टाटा समूह के संस्थापक जमशेदजी टाटा 20–वीं शताब्दी में 10200 करोड़ डॉलर दान के साथ बिल एवं मिलिंदा गेट्स (7460 करोड़ डॉलर) एवं वारेन बुफे (3740 करोड़ डॉलर) से भी बड़े दानदाता रहे। वर्तमान समय की बात करें तो विप्रो समूह के संस्थापक अज़ीम प्रेमजी अपनी 2200 करोड़ डॉलर की संपत्ति परोपकार के कार्यों हेतु दान कर भारत के शीर्ष दानदाता हैं। वित्तीय वर्ष 2020 में भी लगभग 22 करोड़ रुपए प्रतिदिन औसत दान के साथ अज़ीम प्रेमजी का परिवार भारत में सर्वाधिक दान देने वालों की सूची में प्रथम एवं शिव नादर परिवार लगभग 2–करोड़ रुपए प्रतिदिन दान के साथ द्वितीय स्थान पर है।

बीसवीं एवं इक्कीसवीं सदी में उद्योगपतियों एवं व्यापारियों से इतर भी समाज के हर वर्ग द्वारा दान देने के अनेकों उदाहरण हैं। संत विनोबा भावे द्वारा वर्ष 1951 में शुरू किये गए भूदान आंदोलन से प्रेरित होकर भूमिधारकों नें स्वेच्छा से लगभग 45 लाख एकड़ जमीन भूमिहीनों को दान कर दी थी। मुजफ्फरनगर (उ0 प्र0) में शुक्रताल का जीर्णोद्धार करने वाले पदमभूषण स्वर्गीय स्वामी कल्याणदेव ने सामान्य जनता द्वारा दिए गए दान से ही पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, दिल्ली आदि प्रांतों में लगभग 300 विद्यालयों, महाविद्यालयों, अस्पतालों आदि संस्थाओं का निर्माण करा एक अनूठी मिशाल स्थापित की। धौलाना (उ0 प्र0) को कर्मभूमि बनाने वाले शिक्षाविद स्वर्गीय श्री मेघनाथ सिंह द्वारा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 65 से अधिक विद्यालयों, महाविद्यालयों, आईटीआई, एवं प्रशिक्षण संस्थानों का आम जनता के दान से निर्माण करा अशिक्षा के अंधकार में डूबे क्षेत्र में शिक्षा की अलख जगाने का कार्य किया। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई0 आई0 टी0) कानपुर से हाल ही में सेवानिवृत्त प्रोफेसर, बचपन से समाजसेवी एवं कॉन्सेप्ट्स ऑफ़ फिजिक्स जैसी अनेकों विश्वप्रसिद्द पुस्तकों के लेखक पदमश्री डॉक्टर हरिश्चन्द्र वर्मा द्वारा अपनी समस्त संपत्ति ग्रामीण एवं आभावग्रस्त छात्रों को भारतीय मूल्य एवं संस्कृति आधारित शिक्षा हेतु दान कर वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणापुंज बनकर उभरे हैं।

वर्ष 2021 में चौरिटी ऐड फाउंडेशन ने यह जानने के लिए कि, किस देश के नागरिक सर्वाधिक दान देने वाले हैं, एक सर्वेक्षण किया. इसमें धन दान, स्वयंसेवी संगठन को समय देना, तथा किसी अनजान की सहायता करने जैसे तीन बिंदुओं के आधार पर तैयार किये गए 'वर्ल्ड गिविंग इंडेक्स' में भारत का 14 वां स्थान रहा है। साथ ही इंडोनेशिया पहले, कीनिया दूसरे, नाईजीरिया तीसरे, म्यांमार चौथे तथा अमेरिका उन्नीसवें स्थान पर रहा है। इस सूची से यह भी परिलक्षित होता है कि किसी देश के नागरिकों में दान देने की प्रवृति का उसकी समृद्धि एवं आर्थिक स्थति से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। आर्थिक रूप से पिछड़े देशों जैसे कीनिया, नाईजीरिया तथा म्यांमार का इस सूची में शिखर पर होना इस मत को आधार प्रदान करता है कि दानशीलता एवं त्याग, धन,संपत्ति, समृद्धि के उपफल न होकर व्यक्ति के नजरिये एवं चरित्र का उपफल है। भारतीय रिज़र्व बैंक के अनुसार भारत की लगभग 22 प्रतिशत जनता (25.7 प्रतिशत ग्रामीण, 13.7 प्रतिशत शहरी) गरीबी में जीवन यापन करती है। अतः इस 22 प्रतिशत जनता को बाकी की तरह अवसर देने के लिए हर समृद्ध भारतीय को दान देने के लिए आगे आना चाहिए। 78 प्रतिशत समृद्ध एवं संसाधन युक्त व्यक्तियों एवं समूहों को दुनिया में सह–अस्तित्व के सिद्धांत को स्वीकारना चाहिए कि, चाहे कोई कितना भी आर्थिक रूप से समृद्ध क्यों न हो, वह शेष दुनिया से अलग ऐसे किसी स्वर्ग का निर्माण नहीं कर सकता जहाँ पृथ्वी पर रह रहे उसके अन्य सहचरों को प्रभावित करने वाली समस्याएं न पहुंच पाएं। वास्तव में पृथ्वी के प्रत्येक जीव का भाग्य, दुर्भाग्य शेष जीवों के भाग्य, दुर्भाग्य से जुड़ा है। कोरोना जैसी महामारी ने इस वास्तविकता का अहसास भलीभांति कराया है।

इस वास्तविकता से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता कि समाज में निःस्वार्थ दान देने की प्रवृति में धीरे–धीरे कमी आ रही है। इसके अनेकों कारणों में से एक लोगों में बढ़ती आर्थिक एवं सामाजिक असुरक्षा प्रतीत होती है। असुरक्षा एवं प्रतियोगिता की बढ़ती भावना, बढ़ती जनसँख्या के कारण वस्तुओं एवं अवसरों की सीमित उपलब्धता (जैसे पानी, अनाज, स्वास्थ्य, शिक्षा, रोज़गार आदि के कारण धनवान व्यक्तियों में असुरक्षा की भावना में वृद्धि हो रही हैं। वैसे तो भारतीय संस्कृति के मूल में दान का संस्कार हैं, परन्तु बदलते विश्व परिदृश्य एवं भौतिकता आदि के प्रभाव से इस संस्कार पर जमी परत को उतारने के लिए दान के भाव की जुताई, खुदाई, सिंचाई कर उसके पोषण की आवश्यकता है. जिस तरह सिनेमा में दान के महत्त्व को रेखांकित करने वाले अनेकों गीतों का निर्माण हुआ है जैसे, 'दस लाख' फिल्म (1966) का 'गरीबों की सुनो वो तुम्हारी सुनेगा, तुम एक पैसा दोगे वो दस लाख देगा', एवं 'एक फूल दो माली' फिल्म (1969) का 'भूखे गरीब की ये ही दुआ है...', ऐसे ही दान सहित अन्य सांस्कृतिक मूल्यों के पोषण में मीडिया, साहित्य एवं सिनेमा की अहम् भूमिका है. आज भारतीय संस्कृति में निहित और पूर्व में गाँधीजी द्वारा समर्थित ट्रस्टीशिप की अवधारणा को व्यवाहरिक बना अमल में लाने की आवश्यकता है। ट्रस्टीशिप के विचार के अनुसार जो भी धन–संपत्ति हमारे पास है वह सिर्फ हमारी न होकर समस्त समाज एवं मानवता की है। इसके लिए प्रत्येक नागरिक में इस अहसास का अंकुरण जरूरी है कि, 'संपत्ति में मेरा व्यक्तिगत हिस्सा सिर्फ उतना ही है जितना एक सम्मानजनक जीवन जीने के लिए आवश्यक है। शेष संपत्ति पर समाज एवं राष्ट्र का अधिकार है और उसका प्रयोग केवल लोकोपकार एवं समाज कल्याण के लिए ही होना चाहिए। मैं संपत्ति का मालिक न होकर मात्र इस संपत्ति का ट्रस्टी हूँ'। अब आवश्यकता सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त एवं कमजोर वर्गों के बीच ट्रस्ट अर्थात् भरोसा विकसित कर एक दूसरे के सुख–दुःख में परस्पर सहभागी बन राष्ट्र को परम वैभव तक पहुंचाने की है। (निजी विचार) ■

समरसता व विश्व बंधुत्व का प्रतीक रक्षाबंधन पर्व

डॉ. नीलम कुमारी
विभागाध्यक्ष (अंग्रेजी विभाग)
किसान पोस्ट ग्रेजुएट कॉलज, सिम्भावली, हापुड़

अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

अर्थात् यह मेरा है, यह उसका है; ऐसी सोच संकुचित चित्त वाले व्यक्तियों की होती है;इसके विपरीत उदारचरित वाले लोगों के लिए तो यह सम्पूर्ण धरती ही एक परिवार जैसी होती है।

विभिन्न संस्कृतियों से परिपूर्ण एवं समृद्ध विरासत की पुण्य भूमि भारत वर्ष वसुधैव कुटुम्बकम की भावना से अभिसिंचित है और भारतीय सभ्यता व संस्कृति में प्राचीन काल से ही हमारे त्यौहार एवं पर्व सामाजिक समरसता व विश्व बंधुत्व का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह हमारे त्योहार मात्र परंपरा ही नहीं है अपितु सामाजिक समरसता, संस्कृति और सभ्यता की खोज तथा हमें अपने अतीत से जुड़े रहने का एहसास भी कराते हैं। होली दीपावली की तरह रक्षाबंधन का पर्व सामाजिक समरसता व आपसी भाईचारे का पवित्र त्यौहार है। इस पर्व का भारतीय समाज व संस्कृति में अत्यंत महत्व है। रक्षाबंधन का उद्देश्य बहिन द्वारा भाई के हाथों में रक्षासूत्र बंधवाना ही नहीं है अपितु रक्षाबंधन का महत्व वर्तमान राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों में और भी अधिक बढ़ जाता है।

वर्तमान कोरोना संक्रमणकाल में हम इस रक्षासूत्र के बहाने अपने देश व समाज को एकसूत्र में पिरोकर रखने का भी संकल्प लेते हैं। रक्षाबंधन में राखी या रक्षासूत्र का विशेष महत्व है। यह राखी कच्चे सूत जैसी वस्तु से लेकर रंगीन कलाव, रेशमी धागा, सोने या चांदी जैसी महंगी वस्तु की भी हो सकती है। राखी बांधने का प्रचलन समाज में व्यापक है। लगभग पूरे भारत में यह पर्व मनाया जाता है।

प्राचीनकाल से ही अपने देश के उत्सव सामाजिक समरसता एवं सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ाने वाले हैं। रक्षाबंधन उत्सव इसी परम्परा की एक कड़ी है। यह पवित्र पर्व श्रावण शुक्ल मास की पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। आत्मीयता एवं रिश्तों की

मजबूती से परिपूर्ण यह पर्व भाई–बहन के प्यार एवं स्नेह के साथ–साथ अधिकार एवं कर्त्तव्यों का भी बोध कराता है तथा साथ ही यह पर्व भारतीय धर्म संस्कृति एवं परंपरा का प्रतीक भी है। इस पर्व पर भाई अपनी बहन से अपनी कलाई पर रक्षा सूत्र का धागा बंधवा कर, उसको उपहार देकर उसकी रक्षा एवं सुरक्षा का वचन देते हैं।

रक्षाबंधन को कुछ स्थानों पर राखी का पर्व भी कहा जाता है। भाई बहन के निर्मल स्नेह को अखंड रखने और प्रेरक बल प्रदान करने वाला यह पर्व काल क्रम में हुए अनेक परिवर्तनों के अनुरूप निरंतर परिवर्तनशील रहा है, परन्तु यह कब प्रारंभ हुआ इसके संबंध में कुछ स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। यह वैदिक काल से ही प्रचलन में है, सर्वप्रथम इसका उल्लेख पुराणों में मिलता है। जब असुरों से पराजित होकर सभी देवता अपनी रक्षा के निमित्त देवराज इंद्र के नेतृत्व में गुरु बृहस्पति के पास पहुंचे और देवराज इंद्र ने दुखी होकर बृहस्पति से कहा कि 'देवगुरु अच्छा होगा कि अब मैं अपना जीवन ही समाप्त कर लूं।' गुरु बृहस्पति के निर्देश पर इंद्राणी ने श्रावण पूर्णिमा के दिन इंद्र सहित सभी देवताओं की कलाई पर रक्षा सूत्र बांधा, अंततः इंद्र ने युद्ध में विजय प्राप्त की। पद्मपुराण, स्कंधपुराण और श्रीमद् भागवत में भी वामन अवतार कथा में रक्षाबंधन के प्रसंग का उल्लेख है। राजा बलि ने 100 यज्ञ पूर्ण करने के बाद स्वर्ग पर अपना आधिपत्य करने की चेष्टा की थी जिसको भगवान विष्णु ने वामन अवतार लेकर विफल कर दिया था, वर्णन है कि उन्होंने ब्राह्मण वेश में राजा बलि से तीन पग भूमि दान में लेकर आकाश, पाताल और पृथ्वी को तीन पग में नाप लिया था और राजा बलि को रसातल में भेज दिया था परन्तु राजा बलि ने अपनी भक्ति से भगवान विष्णु को हमेशा अपने पास रहने का वचन ले लिया। विष्णु जी के घर पर न लौटने से परेशान लक्ष्मी जी को नारद जी के बताएं उपाय के अनुसार लक्ष्मी जी ने राजा बलि को भाई बना कर श्रावण माध की पूर्णिमा के दिन रक्षा सूत्र बांधा और अपने पति को उपहार स्वरूप वापस ले आयीं, तभी से रक्षा सूत्र बांधते समय 'येन बद्धो बलि राजा दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वामनुबध्नामि रक्षे मा चल मा चलस।' श्लोक का उच्चारण करते है, जिसका अर्थ है कि जिस रक्षा सूत्र से दानवों के महा पराक्रमी राजा बलि धर्म के बंधन में बंध गए थे अर्थात् धर्म में प्रयुक्त किए गए थे, उसी सूत्र से मैं तुम्हें बांधता हूं यानी धर्म के लिए प्रतिबद्ध करता हूं, हे रक्षे तुम स्थिर रहना, स्थिर रहना।

रक्षाबंधन का पर्व हमेशा से ही सामाजिक समरसता एवं सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा देने वाला रहा है तथा देश काल की परिस्थितियों के अनुरूप अपने आप को इसमें ढालता रहा है। इस पर्व का महत्व

सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियों में और भी अधिक है, वर्तमान में भी रक्षाबंधन के दिन भारत के प्रधानमंत्री एवं राष्ट्रपति सहित सभी उच्च पदस्थ लोग रक्षा सूत्र बांधकर व बंधवाकर समाज एवं देश की रक्षा करने का वचन लेते हैं एवं देते हैं। प्राचीन काल में भी पुरातन भारतीय परंपरा के अनुसार जो समाज का पथ प्रदर्शक गुरु अर्थात् शिक्षक वर्ग होता था वह रक्षा सूत्र के सहारे देश की ज्ञान परंपरा की रक्षा का संकल्प शेष समाज से कराता था। सांस्कृतिक और धार्मिक पुरोहित वर्ग भी रक्षा सूत्र के माध्यम से समाज से रक्षा का संकल्प कराता था। प्रायः हम देखते हैं कि किसी भी अनुष्ठान के पश्चात् रक्षा सूत्र के माध्यम से उपस्थित सभी व्यक्तियों को रक्षा का संकल्प कराया जाता है, इस सब का अभिप्राय यही है कि शक्ति संपन्न सामर्थ्यवान वर्ग अपनी क्षमता के अनुसार समाज के श्रेष्ठ मूल्यों का एवं समाज की रक्षा का संकल्प लेता है। इस प्रकार इस पर्व पर जो लोग सक्षम है वह अन्य को विश्वास दिलाते हैं कि वे निर्भर हैं और किसी भी संकट में उनके साथ खड़े रहेंगे।

सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने के लिए सामाजिक संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य भी रक्षाबंधन पर्व को बड़े उत्साह एवं धूमधाम से मनाते हैं यह भी उनका महत्वपूर्ण पर्व होता है। जाति, धर्म, भाषा, धन–संपत्ति, शिक्षा या सामाजिक ऊंच–नीच का भेद इनके बीच अर्थहीन होता है रक्षाबंधन का सूत्र इन सारी विभेदकारी विविधताओं के ऊपर एक समानता वाली सृष्टि रखता है, बहुत सी भिन्नताओं के होते हुए भी समरसता का भाव इनके बीच अटूट होता है। इस पर्व के माध्यम से एक रक्षा सूत्र के द्वारा सभी स्वयंसेवक आत्मीय भाव से बंधकर परंपरागत कुरीतियों को दूर कर, एक दूसरे के प्रति प्रेम और समर्पण भाव से परस्पर बंध जाते हैं। रक्षाबंधन पर्व पर स्वयंसेवक परम पवित्र भगवा ध्वज को रक्षा सूत्र बांधकर उस संकल्प का स्मरण करते हैं जिसमें कहा गया है कि हम सब मिलकर धर्म की रक्षा करें, समाज में मूल्यों और अपनी श्रेष्ठ परंपराओं का रक्षण करें। धर्म कोई बाहरी वस्तु नहीं है यह हम सब के हृदय में छिपी लोक मंगलकारी भावना एवं व्यवहार का नाम है। ध्वज को रक्षा सूत्र बांधने का अर्थ भी यही है कि हम सब समाज के लिए हितकर परंपरा का अनुसरण करेंगे। रक्षाबंधन पर्व पर स्वयंसेवक समाज के बीच में वंचित एवं उपेक्षित बस्तियों में जाकर उनके बीच बैठकर, उन्हें भी रक्षा सूत्र बांधते एवं बंधवाते हैं और यह संकल्प दोहराते हैं जिसमें भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि 'समानम सर्वभूतेषु।'

रक्षाबंधन सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने के साथ–साथ नारी अस्मिता एवं उसकी रक्षा का पर्व भी है। इस दिन महिलाएं सेना एवं सुरक्षा बलों के जवानों को भी राखी बांधकर उनसे देश एवं स्वयं की रक्षा का वचन लेती है। इस दिन हिंदू समाज के सभी लोग बिना भेदभाव के एक दूसरे की कलाई में रक्षा सूत्र बांधकर सामाजिक समरसता का भाव जागृत करते हुए समाज में व्याप्त कुरीतियों, रंगभेद, जातिवाद व भेदभाव दूर करने का संकल्प लेते हैं। रक्षाबंधन पर्व हमारे सामाजिक परिवेश एवं मानवीय रिश्तो का सबल अंग है, इसमें हमारे मानवीय जीवन मूल्य छिपे हैं जो कि राष्ट्र और समाज के कल्याण में सहायक है। यह पर्व हमें स्मरण कराता है कि हम सब एक परम पिता की संतान हैं और हम सभी को एक दूसरे के हित में विचार करते हुए राष्ट्र एवं समाज के प्रति समर्पण भाव से एकीकृत रूप में कार्य करना चाहिए, रक्षा सूत्र हमें शब्द, विचार और कर्म में शुद्धता हेतु बोध कराता है। रक्षाबंधन पर हमें संकल्प लेना चाहिए कि 'हम सब भारत माता की संतान हैं, हम सब एक हैं और इस विशाल समाज के अंग हैं, हमें भेदभाव और छुआछूत जैसी कुरीतियों को समूल नष्ट करना है।' हमें अपने जीवन में उन भगवान श्री राम के आदर्शों को समाहित करना चाहिए जिन्होंने वन में निषादराज का आतिथ्य तो स्वीकार किया ही था साथ ही भीलनी माता शबरी के जूठे बेर भी बड़े चाव से आत्मीयता पूर्वक गृहण किये थे।

राक्षबन्धन द्वारा सामाजिक समरसता व परस्पर एकता का उदाहरण हमे स्वतंत्रता संग्राम में जनजागरण के लिए प्रयोग हेतु भी देखने को मिलता है।

बंगाल में रवींद्र नाथ ठाकुर ने बंगभंग का विरोध करते समय रक्षाबंधन पर्व को बंगाल निवासियों के लिये पारस्परिक एकता का प्रतीक बनाकर इस पर्व का राजनैतिक उपयोग प्रारम्भ किया। 1905 में उनकी प्रसिद्ध कविता मातृभूमि वंदना का प्रकाशन हुआ। लार्ड कर्जन ने बंगभंग करके वंदेमातरम के आंदोलन से भड़की एक छोटी– सी चिंगारी को शोले में बदल दिया। 16 अक्टूबर 1905 के दिन बंगभंग की नियत घोषणा के दिन रक्षाबंधन की योजना साकार हुई और लोग गंगा–स्नान करके सड़कों पर उतर आये। इस प्रकार तमाम हिंदू संगठनों की ओर से समाजिक समरसता और विश्व बंधुत्व की भावना को प्रबल बनाने के लिए रक्षासूत्र बांधने का आयोजन किया जाता रहा है।

भारत के प्रत्येक प्रांत में यह पर्व किसी न किसी नाम से जाना जाता है। उत्तरांचल में इस पर्व को श्रावणी के नाम से जानते हैं। अमरनाथ यात्रा का समापन भी रक्षाबंधन के दिन होता है। महाराष्ट्र में इस दिन लोग नदी या समुद्र के किनारे एकत्र होते हैं और पवित्र होकर नया जनेऊ धारण करते हैं। यही कारण है कि इस दिन मुंबई के समुद्र तट नारियल के फलों से भर जाते हैं।राजस्थान में यह पर्व रामराखी और चूड़ाराखी के नाम से जाना जाता है। तमिलनाडु , केरल, महाराष्ट्र और ओडिशा के दक्षिण में इस पर्व को अवनि अवित्तम कहते हैं। यज्ञोपवीत धारी ब्राहमणों के लिए यह दिन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस दिन पवित्र होने के बाद ऋषियों का तर्पण करके नया जनेऊ धारण किया जाता है। स्वच्छ जीवन प्रारम्भ करने की प्रतिज्ञा की जाती है। व्रज में हरियाली तीज से लेकर श्रावणी पूर्णिमा तक समस्त मंदिरों में श्री कृष्ण जी झूलें विराजमान रहते हैं। रक्षाबंधन के दिन झूलन दर्शन समाप्त होता है।

अनेक साहित्यिक ग्रंथों में रक्षाबंधन का उल्लेख मिलता है। एक प्रकार से देखा जाये तो रक्षाबंधन नारी अस्मिता व उसकी रक्षा का पर्व तो है ही साथ ही विश्व बंधुत्व की भावना से ओतप्रोत सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने का भी पर्व है जो समस्त विश्व के कल्याण हेतु समस्त मानवजाति के सुख, समृद्धि व शांति की मंगलकामना करता है। जिसका संदेश वर्तमान संकट काल मे और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामया
सर्वे भद्राणी पश्यन्तु माँ कश्चित दुःख भाग भवेत'

राष्ट्रनीति बनाम राजनीति

डॉ. उर्विजा शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
एस. डी. पी. जी. कॉलेज, गाजियाबाद

'राष्ट्र च रोह द्राविण च रोह' - अथर्ववेद 13।1।34।

'राष्ट्रमृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय' अथर्ववेद 19।37।3

विगत कुछ माह न केवल भारत वरन् संपूर्ण विश्व के लिए बहुत भयावह रहे है। वैश्विक महामारी कोरोना के संकट से संपूर्ण विश्व त्राहिमाम किये हुए है। ऐसे विकट समय में जब संपूर्ण मानवता के लिए संकट है तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि भारत एवं विश्व के दृष्टिकोण में इस संकट के समाधान के प्रयास कैसे है? यह प्रश्न इसलिए भी है क्योंकि गत छमाही में जब भारत कोरोना की दूसरी लहर का त्रास झेल रहा था तो एक राष्ट्र के रूप में हमारा विशेषकर राजनीतिक गलियारों से जुड़े समूहों का स्वरूप क्या रहा ? क्या हमने राष्ट्रनीति का निर्वहन किया? क्या राष्ट्र एवं राष्ट्र के नागरिकों के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन किया? अथवा केवल राजनीतिक रोटियां सेकने हेतु मानवता को कलंकित किया? विशेषकर विपक्षी दलों ने सत्ता पक्ष को घेरने हेतु अवसर का लाभ उठाने का प्रयास किया। यहां यह भी ध्यातव्य है कि जहां ऐसे आपदा के समय में तथाकथित स्वार्थी तत्व अवसर की तलाश में रहे वहीं कुछ समूह, संस्था व व्यक्तियों ने अपनी देहदान करके सेवा का ऐसा अप्रतिम उदाहरण भी प्रस्तुत किया जो स्तुति करने योग्य है। यह सब प्रश्न हमें झकझोरने को विवश करते हैं कि हमने राष्ट्रनीति का निवर्हन ज्यादा आवश्यक माना अथवा राजनीति का।

भारत की संस्कृति सर्वधर्म समभाव विश्वकल्याण एवं विश्वमानवता की है। ऐसे अवसर पर विवेचना करने से पूर्व राष्ट्र की अवधारणा एवं राजनीति के स्वरूप को जानना आवश्यक है। राष्ट्र की परिभाषा एक ऐसे जनसमूह के रूप में एक निश्चित देश में रहता हो और जिसमें समान परम्परा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बंधा हो और जिसमें एकता के सूत्र में बांधने की उत्सुकता तथा समान महत्वाकांक्षाएं पाई जाती हो। वहीं राष्ट्रनीति एवं राष्ट्रवाद को यदि समझना हो तो निर्णायक तत्वों में राष्ट्रीयता की भावना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। वस्तुतः "राष्ट्रीयता की भावना किसी शब्द के सदस्यों में पाई जाने वाली सामुदायिक भावना है जो उनका सुदृढ़ संगठन करती है" (विकीपीडिया)

राष्ट्रवाद के आधारतत्वों में सांझा इतिहास परम्परा भाषा, जातीयता व संस्कृति को समाहित किया जा सकता है। यदि भारत के परिप्रेक्ष्य में देखें तो भारत बहुभाषी, बहुधर्मी, बहुजातीय राष्ट्र है। ऐसी स्थिति में एक राष्ट्र के रूप में सबको समेटते हुए हम प्रगति कर सकते है। हमने एक राष्ट्र के रूप में एक निश्चित भूभाग के अंतर्गत राजनीतिक आदर्शों का निर्माण भी किया है एवं वर्तमान में लोकतंत्र का आदर्श हमारे लिए सर्वप्रमुख है। अतः भारत के संदर्भ में राष्ट्रवाद का अभिप्राय सभ्यतामूलक नैरतय विकसित, संस्कृति, विश्वास, आशा–आकांक्षा और राजनीतिक समझ विकसित करना ही है। पश्चिम में राष्ट्रवाद का स्वरूप अलग ही है वहां राष्ट्रनीति व राजनीति का सम्मिलन ही राष्ट्र है। किन्तु हमें ऐसे राष्ट्रवाद की आवश्यकता नहीं है। जो न केवल राष्ट्र में असहिष्णुता फैलाए वरन् समस्त विश्व को अशांत कर अपनी स्वार्थपूर्ति करे। उदाहरण के लिए 'बुहान लैब' के द्वारा किया गया कृत्य इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है जहां कतिपय स्वार्थी राष्ट्र विश्व मानवता को संकट में डालने से भी हिचकते हैं। हमने सामंजस्य को सर्वाधिक महत्व दिया है तथा यही हमारी खूबी रही है। समन्वय की नैतिक भावना ही हमें महान बनाती है और हमारे कला, विश्वविज्ञान व धर्म का विकास इसी आधार पर हुआ है। अतः हमें ऐसी राष्ट्रनीति की आवश्यकता है जो राजनीति के नियमों से संचालित न हो। हमारा राष्ट्र का अभिप्राय राष्ट्रीयता की सामान्य चेतना का द्योतक है। जो. ए. जिम्मन के अनुसार – " किसी सुनिश्चित स्वदेश के साथ जुड़ी विचित्र तीव्रता, घनिष्ठता तथा सम्मान की भावना का संयुक्त रूप है।" इस संदर्भ में डॉ. हेडगेवार जी का कथन उल्लेखनीय है – "किसी एक विशिष्ट भूभाग में लोग केवल रहते है, इसलिए राष्ट्र नहीं बनता। उसके लिए तो उस भूभाग के अन्दर सदियों से रहते हुए उसके साथ एक भावात्मक संबंध स्थापित होना पड़ता है। यह भूमि मेरी मां है, मैं इसका पुत्र हूं और पुत्र होने के नाते हम सब एक हैं हमारे पूर्वज एक हैं, हमारी संस्कृति एक है। मेरे विचार में राष्ट्र का आधार यदि यह भावना होगी तो राष्ट्रनीति में भी सुचिता व सामंजस्य रहेगा।

अब राजनीति के प्रश्नों पर विचार आवश्यक है। वस्तुतः राजनीति दो शब्दों का एक समूह है राज+नीति अर्थात् शासन करने की कला, अथवा नीति विशेष के द्वारा शासन करना या विशेष उद्देश्य को प्राप्त करना राजनीति है। दूसरे शब्दों में कहें तो नागरिक स्तर पर नागरिकों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर शासन द्वारा किये गये क्रियाकलापों को राजनीति कह सकते हें। इसके अपने स्तर हैं जो गांव की परंपरागत राजनीति से लेकर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होती है। राजनीति वैसे तो राननीतिक विचारों व सिद्धांतों को आगे बढ़ाते हुए जनकल्याण का माध्यम होनी चाहिए किन्तु प्राचीन काल से ही राजनीति सदैव सत्ता प्राप्ति एवं स्वार्थपूर्ति का साक्ष्य बनीं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण महाभारत युग में घटी घटनाओं से मिल जाता है। यदि वर्तमान संदर्भों में देखें तो स्वतंत्रता

प्राप्ति भी राजनीतिक दांवपेचों से "मजहबी आधार" पर विभाजन के रूप में हुई। आज भी भारत पाकिस्तान निरंतर राजनीतिक प्रपंचों का केन्द्र रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रत्येक देश राजनीतिक स्वार्थपूति हेतु दूसरे देशों में कभी आतंकवाद, कभी आर्थिक हित तो कभी शक्तिसंपन्न बनकर अपने पांव जमाने में लगा रहता है। 'वैक्सीन कूटनीति' दवा को लेकर संघर्ष भी इसी का एक हिस्सा है।

भारत में राजनीति का स्तर दिन–प्रतिदिन गिरता जा रहा है। इसका एक कारण राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र का अभाव है जिस कारण पार्टियों में निष्पक्षता व पारदर्शिता के अभाव के कारण, अयोग्य व्यक्ति पद प्राप्त करते हैं, फलस्वरूप 'राष्ट्रनीति कैसी हो' यह जानने में विफल रहते हैं। विरोध के लिए विरोध ही वर्तमान राजनीति का मंत्र बन चुका है चाहे इसके लिए 'राष्ट्र' को कितना ही मूल्य क्यों ना चुकाना पड़े। केवल भारत ही नहीं वरन पूरे विश्व का भी यही ट्रेंड बन चुका है। इसी कारण हम दक्षिणपंथी एवं वामपंथी विचारधाराओं में बंट चुके है। धर्म, जाति, पंथ, भाषा एवं क्षेत्र को लेकर राजनीति करने लगे हैं। ऐसे में पोस्टर–विज्ञापन देने की मानो होड़ ही लग चुकी है। उसके लिए चाहे कर्मठ राजनीतिज्ञों को अपशब्द कहना हो अथवा कोविड के समय सरकार को नीचा दिखाने हेतु की गयी कालाबाजारी हो, या फिर किसी की हत्या करके राजनीतिक लाभ लेने की चेष्टा हो अथवा वैक्सीन जो वर्तमान समय की अनिवार्य आवश्यकता है उसे लेकर की जाने वाली बयानबाजी से चहुंओर राजनीतिक छल–प्रपंचों का जाल है। अब समय आ गया है कि हम अपनी सोच को विकसित कर 'राष्ट्रनीति' अपनाऐं 'राजनीति' नहीं। राष्ट्र के प्रति समर्पित भाव प्रत्येक नागरिक के हृदय में होगा तभी राष्ट्रनिर्माण संभव हो सकेगा। देश की एकता व अखण्डता के लिए यह परम आवश्यक है। भारत एक विराट सांस्कृतिक राष्ट्र है पर स्मरण रखने योग्य यह है कि बिना सांस्कृतिक एकात्मकता के राजनीतिक इकाईयां कोई राजनीतिक दर्शन नहीं दे पाती है। ■

बढ़ती हुई जनसंख्या चिंता का विषय है

रंजना मिश्रा
लेखिका

विश्व आज बढ़ती हुई जनसंख्या से अत्यधिक चिंतित है। प्रकृति और देश के संसाधन सीमित होते हैं और जनसंख्या वृद्धि से उन पर अत्यधिक दबाव पड़ता है, उनका अत्यधिक दोहन होता है। विश्व में भारत जनसंख्या की दृष्टि से दूसरे नंबर पर आता है, पहले नंबर पर चीन है, किंतु कुछ रिपोर्टों से आशंका जताई गई है कि अगले कुछ वर्षों में भारत जनसंख्या की दृष्टि से चीन को भी पछाड़ देगा, यह बहुत ही चिंतनीय विषय है। पूरे विश्व में हर साल 8 करोड़ की जनसंख्या वृद्धि होती है, इसमें से दो करोड़ की वृद्धि अकेले भारत करता है, अर्थात पूरी दुनिया की कुल जनसंख्या वृद्धि का एक चौथाई हिस्सा अकेले भारत के हिस्से में आता है। भारत में प्रति मिनट 52 बच्चे पैदा होते हैं, जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है, किंतु क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का स्थान विश्व में सातवां है। क्षेत्रफल के अनुपात में भारत की जनसंख्या कई गुना है और इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है, जो बड़ी चिंता का कारण है।

जनसंख्या वृद्धि अनेक समस्याओं को जन्म देती है। अधिक जनसंख्या से आवासों की कमी होती है, गांवों और शहरों में लोग छोटे–छोटे घरों में रहने को मजबूर हैं, यहां तक कि झुग्गी झोपड़ियों में भी रहकर लोगों को अपना जीवन गुजारना पड़ता है। अधिक जनसंख्या के कारण जल और वायु प्रदूषण भी बढ़ता है। जनसंख्या की वृद्धि के साथ–साथ लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उद्योगों की भी बढ़ोत्तरी होती है, जिससे जल और वायु का प्रदूषण फैलता है। आवास की समस्या को हल करने के लिए वनों की कटाई होती है तथा मनुष्यों के रहने के लिए गांवों और शहरों का निर्माण किया जाता है। लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पेड़ों को काटा जाता है, जिससे लकड़ी प्राप्त होती है और उसे मनुष्य जीवन में उपयोग में लाया जाता है। वनों एवं पेड़ों की कटाई से हमारी प्राकृतिक संपदा का नुकसान होता है एवं प्रकृति पर भी इसका बहुत बुरा असर पड़ता है, जिसके दुष्परिणाम हमें आए दिन देखने को मिलते हैं। बढ़ती जनसंख्या के कारण वाहनों की भी संख्या बढ़ती जा रही है, जिससे ग्रीन हाउस गैसों का ज्यादा से ज्यादा उत्सर्जन हो रहा है और हमारा वायुमंडल इससे बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। पेड़ प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में कार्बन डाइऑक्साइड अंदर सोखते हैं और ऑक्सीजन बाहर निकालते हैं जो जीवधारियों की प्राणवायु है। पेड़ों के कटने से कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा वायुमंडल में अधिक हो जाएगी, जो मनुष्यों के लिए बहुत हानिकारक है। जनसंख्या बढ़ने के कारण पृथ्वी का तापमान भी बढ़ता है तथा समुद्र के जल का स्तर भी। समुद्र का जल स्तर बढ़ने से समुद्र तटों से घिरे राष्ट्रों एवं समुद्र तटीय इलाकों को भी खतरा है। जनसंख्या वृद्धि से कृषि के लिए उपयुक्त क्षेत्र भी कम हो जाते हैं, जिससे खाद्यान्न की समस्या उत्पन्न होती है। जनसंख्या अधिक होने से आवश्यकता और आपूर्ति में असंतुलन पैदा होता है, जिससे मांग के सामने संसाधन कम पड़ने से महंगाई बढ़ती है, ऐसी स्थिति में पर्याप्त रूप से धनी व्यक्ति तो उन संसाधनों का

उपयोग कर पाते हैं, किंतु गरीब वर्ग उनसे वंचित ही रह जाता है, जिससे सामाजिक असमानता पैदा होती है और समाज में द्वेष और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है।

परिवार जितने छोटे होंगे, उसके सदस्य उतना ही अधिक सुविधा–संपन्न जीवन बिता सकेंगे। बच्चों को अच्छी शिक्षा, अच्छे संस्कार व अच्छा पोषण दिया जा सकेगा। देश की जनसंख्या जितनी कम होगी, नौकरी और सरकारी सुख–सुविधा के उतने ही अधिक अवसर लोगों को प्राप्त होंगे। कम जनसंख्या वाले देशों के नागरिकों को अच्छी शिक्षा, अच्छी जीवन शैली बिताने के अवसर ज्यादा प्राप्त होते हैं। अधिक जनसंख्या होने से देश में अपराधियों की संख्या भी बढ़ जाती है, क्योंकि लोगों के पास जब काम नहीं होगा तो वो गलत मार्ग से धन कमाने की कोशिश करेंगे। इसलिए अच्छी शिक्षा, अच्छे स्वास्थ्य और बेहतर जीवन शैली के लिए किसी देश में जनसंख्या का कम होना ही अच्छा है।

भारत के नागरिकों में युवाओं की संख्या सर्वाधिक है, इसका फायदा यह हो सकता है कि इस युवा आबादी का उपयोग देश की अर्थव्यवस्था को गति देने में किया जा सकता है, किंतु गुणवत्ता परक शिक्षा के अभाव में और सीमित रोजगार के अवसर होने के कारण, ये युवा जनसंख्या भी बोझ बनकर ही रह जाएगी, अर्थात पर्याप्त साधनों की कमी होने के कारण अधिकतर युवा उच्च शिक्षा की डिग्रियां तो प्राप्त कर लेते हैं, किंतु किसी विशिष्ट कार्यक्षेत्र से संबंधित योग्यता को विकसित करने का प्रशिक्षण पाने में असमर्थ रहते हैं, जिसके परिणाम स्वरुप उच्च शिक्षित होने पर भी वे बेरोजगार ही रह जाते हैं।

जनसंख्या की समस्या पर केवल जनसंख्या दिवस मना लेने से ही हमारी जिम्मेदारी पूरी नहीं होती, बल्कि इस पर रोक लगाने के लिए ठोस कदम उठाने होंगे। लोगों को अधिक से अधिक शिक्षित करके एवं उन्हें अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करके, यह बताने की आवश्यकता है कि आज के समय में छोटे परिवार की कितनी अहमियत है और यह क्यों जरूरी है। पढ़े लिखे लोग भी बेटे की चाह में कई संताने पैदा करते हैं, उनकी लिंग भेद की मानसिकता को बदलने की आवश्यकता है।

सरकारें भी अपने राजनीतिक फायदे के चलते इस पर कोई ठोस निर्णय लेने से और कानून बनाने से हिचकती हैं। केवल गोष्ठियां और सेमिनार करके ही हम इस विषय को यूं ही छोड़ देते हैं किंतु अब हमें अत्यंत जागरूक बनना पड़ेगा और जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए उचित कदम उठाने होंगे। सरकार के साथ–साथ देश के प्रत्येक नागरिक को इस पर चिंता करनी होगी और छोटे परिवार की नीति को अमल में लाना होगा। जनसंख्या वृद्धि के कारण ही आज देश में गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी जैसी बड़ी समस्याएं हैं। भारत में एक धर्म विशेष को अपने धर्म के नाम पर अपनी जनसंख्या बढ़ाने की छूट है, जो कि सर्वथा अनुचित है। हमें समान नागरिक संहिता और जनसंख्या नियंत्रण कानून लाकर इस मनमानी पर भी रोक लगानी होगी। देश में यूपी की योगी सरकार ने इस ओर अपने कदम बढ़ा दिए हैं और आशा है कि सभी प्रदेश की सरकारें अपने–अपने राज्यों में ऐसे कानून लाएंगी और भविष्य में देश की उन्नति, विकास तथा खुशहाली की राह प्रशस्त होगी। ■

स्वास्थ्यवर्धक भारतीय सांस्कृतिक परंपराएं

डॉ. रूचि शर्मा
(महिला एवं बाल रोग विशेषज्ञ)

भारतवर्ष विभिन्न संस्कृतियों एवं परंपराओं की भूमि के रूप में दुनिया भर में प्रसिद्ध है। यह प्राचीन सभ्यताओं का देश है। परिवर्तन के इस काल में प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी स्पर्धा में व्यस्त है। प्राचीन काल से चली आ रही हमारी परंपराओं में स्वास्थ्य लाभ के रहस्य छिपे हैं जिन्हें हम आधुनिकता के कारण भूलते जा रहे हैं। भारतीय सांस्कृतिक परंपराएं हमें अनेक बीमारियों से बचाती हैं एवं स्वस्थ जीवनयापन की मार्गदर्शक हैं।

ब्रह्म मुहूर्त में उठना- हमारे शास्त्रों में ब्रह्म मुहूर्त में सोना निषेध माना गया है। ब्रह्म मुहूर्त में उठना रोगमुक्त शरीर एवं जीवन काल में वृद्धि के लिए अहम भूमिका निभाता है। इस समय उठने से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, ऊर्जा का स्तर बढ़ता है, मन एवं शरीर संतुलित रहता है। ध्यान एवं अध्ययन के लिए यह उत्तम समय माना गया है।

हवन-यज्ञ (पूजा-उपासना)- हवन–यज्ञ हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है। यह वातावरण की शुद्धि के लिए अत्यंत लाभकारी है। ऋग्वेद में बताया गया है कि हवन के माध्यम से अनेक बीमारियों से मुक्ति पाई जा सकती है। यह शरीर को आध्यात्मिक बुद्धि प्रदान करता है। एवं मन व शरीर शांत व शुद्ध होता है।

नमस्कार- नमस्कार शब्द संस्कृत भाषा के 'नमस' शब्द से जुड़ा है जिसका अर्थ है एक आत्मा का दूसरी आत्मा का आभार प्रकट करना, सम्मान में झुकना। यह शब्द एवं भावमुद्रा भारतीयों द्वारा एक–दूसरे का अभिवादन हेतु प्रयोग किया जाता है। हाथ जोड़ते समय उंगलियों पर दबाव पड़ता है जिससे स्मरण शक्ति बढ़ती है। नमस्ते अर्थात दूसरों के सम्मान में झुकने से अहम की भावना का नाश होता है एवं आत्मीय संबंध स्थापित होते हैं। योग विद्या के अनुसार हमारे सीने के मध्य अनाहत चक्र विद्यमान है। हाथ जोड़ने से यह चक्र सक्रिय होता है जिससे शरीर में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है। अभिवादन हेतु हाथ मिलाने की परंपरा आधुनिक संस्कृति की देन है जिससे एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में संक्रमण का खतरा भी रहता है जिसकी प्रमाणिकता इस कोरोना काल में विश्व स्तर पर हुई है। परंतु नमस्कार भावमुद्रा से ऐसे किसी भी संक्रमण की संभावना नहीं रहती।

चरण स्पर्श- चरण स्पर्श करना आदर का प्रतीक है। ऐसा करने से शारीरिक, मानसिक एवं वैचारिक विकास होता है। व्यक्ति के स्वभाव में विनम्रता आती है। दूसरों के प्रति समर्पण भाव जागृत होता है एवं अहंकार नष्ट होता है। चरण स्पर्श तीन प्रकार से किया जा सकता है झुककर, घुटनों के बल बैठकर एवं साष्टांग प्रणाम। झुककर पैर छूने से कमर, रीड की हड्डी, पेट की मांसपेशियों की कसरत होती है। घुटनों के बल बैठकर चरण स्पर्श करने से जोड़ों के दर्द में लाभ होता है एवं शरीर की शिथिलता कम होती है। साष्टांग प्रणाम करने से बेचैनी, अवसाद आदि दूर रहते हैं एवं मन शांत रहता है। चरण स्पर्श करने के कारण रक्त का संचार मस्तिष्क की ओर होता है जिससे मस्तिष्क की कोशिकाएं स्वस्थ रहती है।

भूमि पर बैठकर भोजन करना- नीचे बैठकर भोजन करना एक प्रकार का योग है जिसे सुखासन, सिद्धासन या पद्मासन कहते हैं। ऐसा करने से पाचन क्रिया ठीक रहती है, रक्त संचार भली प्रकार से होता है, हृदय तंदुरुस्त रहता है, कमर दर्द में आराम आता है, मांसपेशियों में ऐंठन कम होती है, शरीर लचीला बनता है, वजन नियंत्रित रहता है एवं व्यक्ति आध्यात्मिकता से जुड़ता है।

भोजन ग्रहण करने से पूर्व भोजन को प्रणाम करना- अन्न में देवी अन्नपूर्णा का वास माना गया है एवं धर्मग्रंथों व वेदों के अनुसार अन्न ही ब्रम है अर्थात ईश्वर है। इसी कारण खाना खाने से पहले भोजन को प्रणाम किया जाता है। ऐसा करने से मन शांत एवं स्थिर होता है। भूख भी अच्छी लगती है। शुद्ध भाव से ग्रहण किया गया भोजन ठीक से पचता है एवं शरीर में सकारात्मक ऊर्जा का संचार करता है। हम भोजन को प्रणाम कर अन्न स्वरूप ईश्वर को प्रणाम भी करते हैं।

दाएं हाथ से भोजन ग्रहण करना- हमारे शरीर के दाएं एवं बाएं भागों को हमारे शास्त्रों में विभिन्न कार्यों के लिए निर्धारित किया गया है। शरीर का दाहिना भाग सूर्य का प्रतिनिधित्व करता है, जो ऊर्जा प्रदान करता है। दाएं हाथ से ग्रहण किया गया भोजन शरीर में ऊर्जा का उचित संचार कर शरीर में विद्यमान अग्नि के सूक्ष्म रूप अर्थात जठराग्नि को संतुलित रखता है।

उपवास- उपवास की प्रथा भी प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं में से एक है। जो मानव जीवन को सभी स्तरों पर संतुलन प्रदान करने में अहम भूमिका निभाती है। उपवास करने से विषैले पदार्थ शरीर से बाहर निकलते हैं, पाचन क्रिया ठीक रहती है, मन–मस्तिष्क का संतुलन बना रहता है एवं तनाव भी कम होता है।

अतिथि देवो भवः- भारतीय सभ्यता में अतिथि को देवतुल्य माना गया है। मनुस्मृति एवं श्री विष्णु पुराण में भी कथित है कि अतिथि का आसन, जल, अन्न, मधुर वाणी से यथाशक्ति सत्कार करना चाहिए। अच्छा व्यवहार करने से हमारा मन प्रसन्न, शांत व शरीर तंदुरुस्त रहता है। मिलने जुलने से एवं दूसरों की मदद करने से अवसाद, चिंता, भय, द्वेष, अहंकार आदि शरीर से दूर रहते हैं। जो वर्तमान बीमारियों के अहम कारक हैं।

भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं एवं उनसे लाभ का उल्लेख जितना किया जाए कम है परंतु आधुनिकता के दौर में बदलते आचार–विचार एवं आहार– विहार ने मानव को शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही स्तरों पर दुर्बल बना दिया है। हमारी भारतीय संस्कृति एक अमूल्य धरोहर है जिसे हम पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के कारण भूलते जा रहे हैं। अतः सांस्कृतिक पुनरुत्थान आज की एक अहम आवश्यकता है। आदि काल से चली आ रही भारतीय सांस्कृतिक परंपराएं निसंदेह अतुलनीय है एवं मानव कल्याण का मार्ग है। ■

लव या साजिशों भरा जिहाद !

अनीता चौधरी
पत्रकार

लव जिहाद न जाने क्यों इन दो शब्दों के इस्तेमाल से ही षड़यंत्र वाली जेहादी बू आती है। ऐसा नहीं की इन दो शब्दों का कुछ लम्बा इतिहास रहा है मगर प्यार या लव के नाम पर धोखे और षड़यंत्र भरी जिहादी सोच वाली बेशुमार सच्ची, आँखों देखी कहानियों की लम्बी सूची ने इन दो शब्दों के उद्देश्य पर सौ सवाल खड़े कर रखें हैं। कट्टरपंथी सोच से भरे इस प्यार में षड़यंत्रों की गंध इतनी गहरी है कि आज इसको रोकने के लिए और हिन्दू तथा गैर मुस्लिम लड़कियों की सुरक्षा को देखते हुए कानून की जरूरत आन पड़ी है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, असम जैसे राज्यों ने लव जिहाद वाले धर्मांतरण को लेकर कठोर कदम उठाते हुए हालाँकि कानून बना दिए हैं। मगर लव जेहाद में एक षड्यन्त्र का सिद्धान्त छिपा है जो सिर्फ और सिर्फ इस्लाम के समर्थकों द्वारा विकसित किया गया है। ये थ्योरी सिखाता है कि मुस्लिम पुरुषों को धर्म के विस्तार के लिए हिन्दू या गैर–मुस्लिम समुदायों की महिलाओं को इस्लाम में धर्मपरिवर्तन के लिए प्रेम का ढोंग रचना भी इस्लाम का हिस्सा है। लव जिहाद वाली थ्योरी सिखाती है अगर तुम अल्लाह के बन्दे हो तो ये धोखे वाला प्यार खुदा की राह में तुम्हें नेक देता है जो रसूल को बेहद प्यारा है और जिससे जन्नत नसीब होती है। मौलाना मदरसे में बाकायदा कुरान की आयतों और हदीस का हवाला देते हुए धोखे से भरे इस लव को खुदा का उपहार बताते है। जिसका समर्थन इस्लाम भी करता है और कुरान की कई आयतों में इसका वर्णन भी है। मतलब लव जिहाद मुस्लिम पुरुषों द्वारा हिन्दू या किसी दूसरे धर्म की महिला के साथ प्रेम का ढोंग रचकर, जबरदस्ती या धोखे भरे प्यार वाली मोहपाश में फंसा कर धर्म परिवर्तन कराने की प्रक्रिया होती है जिसका आदेश मौलाना के कुरान की माने तो अल्लाह भी देता है।

जब इस तरह की धर्म शिक्षा और पढाई का ब्यौरा या यूँ कहे की जो शब्द चारों तरफ हंगामा मचा रहे थे, जिज्ञासावश इसके तह तक जाने की इच्छा मेरी भी हुयी। जैसे–जैसे मैं इस पर शोध करने की प्रक्रिया शुरू की और इसके सच्चाई से रु –ब –रु

हुयी वैसे– वैसे सच्चाई दिल को डराने वाला था, एक बार तो विश्वास ही नहीं हुआ कि अल्लाह जो मुसल्लम इंसान और दीन की शिक्षा देने के लिए मशहूर है आखिर वो साज़िश और धोखे वाली इस मोहब्बत का हिमायाती कैसे हो सकता है? अल्लाह के नाम की तो कसमें खा कर सच्ची मोहब्बत की दुहाई देते हुए आखिर कोई प्यार में धर्म के विस्तार के नाम पर खास मंसूबों के साथ धोखा कैसे दे सकता है ? मन में कई सवाल कौंध रहे थे कि, क्या अल्लाह अपने बन्दों की रगों में षड़यंत्र घोलता है ? या फिर अल्लाह दिल और शरीर के साथ किये गए धोखे को ही इमान मानता है? सवाल अनगिनत थे कि आखिर वो खुदा कैसा इष्ट देव होगा जिसके प्रेम की शिक्षा की शुरुआत ही साज़िश और धोखे से होती है। सवाल मेरा अल्लाह के ऊपर नहीं बल्कि अल्लाह के उन बन्दों के ऊपर था जो खुदा के नाम की कसमें खाते हुए खुद को खुदा मान रहे थे और ऊपर बैठा खुदा मूक दर्शक बन तमाशा देख रहा था!

आइये लव जिहाद की उन अनगिनत दिल को दहला देने वाली कहानियों के बारे में बात करने से पहले समझने की कोशिश करते हैं कि आखिर ये लव जिहाद है क्या, इसके पीछे की मंशा क्या है ? क्यों होता है लव जिहाद और कहाँ से हुयी इस शब्द की शुरुआत !

ये सच है कि अबतक लव जेहाद शब्द को कानूनी मान्यता प्राप्त नहीं है लेकिन केरल हाई कोर्ट, इलाहबाद कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट ने इसके वजूद से इंकार भी नहीं किया है, अपनी पहचान छुपा कर, हिन्दू नाम बता कर, प्यार के मोहजाल में फांस कर धर्मान्तरण से जुड़े कई मामलों में इस शब्द का इस्तेमाल करते हुए कोर्ट ने भी ये माना है कि कहीं न कहीं लव जिहाद जैसा रैकेट इस देश में चल रहा है जिसमें दूसरे धर्म के वजूद को ख़त्म करने के लिए और इस्लाम को फ़ैलाने के लिए है गज़वा–ए–हिन्द कायम करने के लिए मुस्लिम युवक, हिंदू या अन्य धर्म की लड़कियों को अपने प्यार के जाल में फंसाकर षड़यंत्र करते हैं। ऐसा मैं इसलिए कह रही हूँ क्योंकि खुद कोर्ट को लगता है कि ये एक ऐसा रैकेट है जिसका अंत सिर्फ इस्लाम धर्म को कबूल करने पर ख़त्म होता है। केरल कोर्ट ने सबसे पहले प्यार, और धर्मान्तरण से जुड़े एक मामले की सुनाई के दौरान इस शब्द का इस्तेमाल किया था। कौन नहीं जनता कि केरल की एक हिन्दू लड़की अकीला अशोकन इसी तरह के प्रेम जाल में फंस कर मस्कट में रह रहे शकील के साथ शादी कर के हदिया जहाँ बन गयी थी। मामले में कोर्ट के सामने जब पूरी रिपोर्ट आयी तो केरल कोर्ट ने शादी को रद्द करते हुए उसके पति शकील के खिलाफ एनआईए जांच के आदेश दिए थे। बाद में मामला सुप्रीम कोर्ट पहुँचा। सुप्रीम कोर्ट ने हालाँकि बालिग होने की वजह से हदिया और शकील की शादी को तो मान्यता दे दी

थी मगर लव जेहाद के अस्तित्व को मानते हुए शकील के खिलाफ एनआईए जांच को बरकरार रखा था।

ऐसा नहीं कि लव जिहाद शब्द सिर्फ भारत के सन्दर्भ में ही प्रयोग किया जाता है किन्तु इसी तरह की गतिविधियाँ अन्य देशों में भी होती रहती हैं। केरल हाईकोर्ट के द्वारा दिए एक फैसले में लव जेहाद को सत्य पाया गया है। बात 2 नवंबर 2009 की है जब केरल के पुलिस महानिदेशक जैकब पुन्नोज ने अपनी एक रिपोर्ट में जब कोर्ट को बताया था कि उन्हें कोई भी इस तरह के संगठन का तार नहीं मिला जो केरल में लड़कियों को मुस्लिम बनाने के इरादे से प्यार करते हों। तब दिसंबर 2009 में केरल कोर्ट के न्यायमूर्ति के.टी. शंकरन ने पुन्नोज की रिपोर्ट को स्वीकार करने से इंकार कर दिया और उसी वक़्त अपना फैसला देते हुए अपने ऑब्ज़र्वेशन में लव जिहाद शब्द का इस्तेमाल करते हुए कहा था कि हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ये जबरदस्ती धर्मांतरण के संकेत हैं जो बड़ी तादात में चल रहे हैं जिसमें साजिश पूरी तरह से नज़र आ रहा है। 'लव जिहाद' मामलों में दो अभियुक्तों की जमानत याचिका पर सुनवाई करते हुए केरल कोर्ट ने ये भी कहा था कि जो तथ्य उनके सामने आये उसके मुताबिक पिछले चार वर्षों में धोखे से विवाह और बाद में धर्म परिवर्तन के 3,000–4,000 मामले सामने आये जिनमें से ज्यादातर में अभियुक्तों ने अपनी पहचान छुपाई है। कुछ इसी तरह की रिपोर्ट कर्नाटक सरकार ने 2010 में दी थी जिसमें कहा था कि "हालांकि बड़ी संख्या में महिलाओं ने इस्लाम में धर्मान्तरण किया है लेकिन इस लव वाले जिहाद के पीछे कोई तथाकथित नाम वाले संगठन है इसके सबूत हाथ नहीं लगे हैं एक रैकेट चल रहा है जिसमें कहीं न कहीं षड़यंत्र की झलक मिल रही है। उत्तर प्रदेश पुलिस ने भी साल 2014 में लव जिहाद के लगातार कई मामले सामने आने पर छल और साज़िश के व्यापक संकेत की बात कही थी।

आइये अब जानने और समझने कि कोशिश करते हैं कि प्यार के नाम से शुरू हुआ ये लव जिहाद धोखे भरे प्यार से शुरू होकर किस बर्बर अंजाम पे ख़त्म होता है। बात करते हैं प्यार में धोखे से भरे साज़िशों वाले जिहाद के कुछ केस के बारे में जहाँ कुछ की जिंदगियाँ बर्बाद हुयी तो कुछ को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा।

शुरुआत करते हैं सबसे पहले हाई प्रोफाइल केस, टीना डाबी से –

साल 2015 के दो आईएएस टॉपर टीना डाबी नंबर वन तो अतहर आमिर खान दूसरे स्थान पर थे साल 2018 में अतहर आमिर खान की शादी काफी सुर्ख़ियों में रहा टीना डाबी ने जब अतहर आमिर खान के साथ अपनी शादी का ऐलान किया तो ट्वीट करते हुए लिखा था कि 'प्यार से बड़ा कोई धर्म नहीं होता' और ट्विटर स्टेटस को बदलते हुए अपने नाम के आगे खान लगा लिया। लेकिन महज़ ढाई साल में ही धर्म ने दिल को कुछ ऐसा हथौड़ा मारा कि प्यार चकनाचूर हो गया। अतहर आमिर खान के साथ टीना डाबी का प्यार ही धर्म वाला रिश्ता तलाक के साथ ही टूट गया। टीना ने अपने नाम के आगे से खान हटा लिया और खान के हटते ही टीना डाबी का जो पहला ट्वीट था वो टीना के ढाई साल के रिश्तों की पूरी दास्ताँ बयां कर रहा था कि किस तरह से धर्म प्यार पर भारी रहा। अपने नाम के आगे से खान हटाने के बाद आईएएस टीना डाबी का पहला ट्वीट था। 'तुम रक्षक काहू को डरना'। आईएएस परीक्षा में टॉपर रही टीना डाबी हालाँकि खुल कर कभी कुछ नहीं बोलीं मगर खान हटाते ही उनका ट्वीट और अपने दफ्तर में हवन पूजन करना, उनके डर, दर्द और प्यार पर धर्म की यातना की सारी दास्ताँ बयां कर रहा था।

अब अपनी निकिता तोमर के ही केस को ले लीजिये मोहब्बत के जिहादी दरिंदों के आगे बहादुर बेटी निकिता नहीं झुकी तो उसे अपनी जान से हाथ गंवाना पड़ा।

ऐसे अनगिनत किस्से हैं अभी हाल ही में झाँसी में एक मामला आया जहाँ छतरपुर में एक पिता की मांग के चलते उसकी बेटी का शव यूपी के झांसी की कब्र से निकाला गया और उसके बाद उसका हिंदू रीति रिवाज से अंतिम संस्कार कराया गया है। दरअसल छतरपुर का यह मामला 8 जुलाई 2021 का है जब किशोरी अहिरवार ने छतरपुर एसपी कार्यालय पहुंचकर एक शिकायती दी। अपनी शिकायत में उन्होंने कहा था कि तब्बू उर्फ तालिब नाम के एक युवक ने हिंदू बनकर उनकी बेटी नीलम अहिरवार से 2016 में शादी कर ली थी बाद में जब सच्चाई सामने आयी तो तालिब और उसके परिवार वालों ने दबाव बना कर नीलम का धर्म परिवर्तन करावा दिया और उसका नाम अफ़रोज़ रख दिया। पिता किशोर अहिरवार के मुतबिक उसके बाद नीलम पर यातनाओं का पहाड़ टूट पड़ा और कलमा पढ़ने और इस्लामिक रीती रिवाज़ का उनपर दबाव बनाया जाने लगा ससुरालवाले उसके साथ आये दिन मार पिट करने लगे। यह भी लव जिहाद का ही मामला था। नीलम उर्फ़ अफ़रोज़ के पिता का कहना है कि 1 जुलाई को उनके पास में उनकी बेटी का फोन आया। उनकी बेटी ने बताया था कि यह लोग सभी मुसलमान हैं और मुझे बहुत ज्यादा परेशान कर रहे हैं, मुझे बचा लीजिए। बेटी की पुकार सुन पिता उससे मिलने उसके घर गए लेकिन तालिब के घर वालों ने उन्हें अपनी बेटी से नहीं मिलने दिया। बाद में बेटी के बारे में कुछ भी पता नहीं चलने पर जब उन्होंने खोज–बीन शुरू की तो पता चला बेटी की हत्या हो गयी है और पिता को बिना बताए उसके शव को दफ़ना दिया गया है।

इंदौर का भी एक ऐसा ही मामला है जहाँ जाबिर फारुखी ने जय बन कर महिला के साथ सम्बन्ध बनाये और फिर धर्मान्तरण के लिए दबाव बनाने लगा। गुजरात का भी एक ऐसा ही मामला है जहाँ सैम इस्लाम का पुजारी अब्दुल्लाह निकला। अभी हाल ही में केरल के ऐसे कुछ मामलों में लड़कियों के माता पिता ने देश के गृहमंत्री अमित शाह से गुहार लगायी कि उनकी बेटी का जबरन धर्म परिवर्तन करवा कर उन्हें आतंकवादी संगठन इस्लामिक स्टेट में भर्ती करने के लिए भेज दिया गया है। इनमें से दो हिन्दू और दो ईसाई थीं।

कितने किस्सों को यहाँ बताऊं जो धोखे और षड़यंत्र से भरे इन दर्दनाक कहानियों की सूची लम्बी है और मेरी लेखनी के लिए पन्ने महज़ गिनती के। इतना ही कहूँगी की इन षड़यंत्र भरे जिहादी लव को लेकर उत्तर प्रदेश, असम, गुजरात, मध्यप्रदेश की सरकारों ने भले कानून बना दिए हों मगर सख्ती के साथ लगाम इन पर अभी भी लगाना बाकी है। शिकायत और गिरफ्तारी के बीच की दूरी की अगर बात करें तो कुछ मौत भरी ज़िन्दगी या दफ़न होती लाशों की है। और ये सब सिर्फ अल्लाह के नाम पर इस्लाम के विस्तार के लिए जिनकी छूट अल्लाह और कुरान भी देता है। ■

भारतीय संस्कृति और आर्थिक विकास

डॉ. प्रियंका सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र
शम्भू दयाल पीजी कॉलेज, गाजियाबाद

भारत का इतिहास एवं संस्कृति गतिशील है। यह अपनी भाषाओं,भौगोलिक क्षेत्रों, धार्मिक परंपराओं और सामाजिक स्तरीकरण के बीच अविश्वसनीय सांस्कृतिक विविधता को समायोजित करता है। इसके मूल्य में दृष्टिकोण, विश्वासों और मानदंडों का सिद्धांत समाहित है। अपनी संस्कृति से समृद्ध भारत का गौरवशाली इतिहास रहा है, इसी कारण प्रत्येक भारतीय को अपनी संस्कृति की विशिष्टता व विविधता पर गर्व है। चाहे व कृषि क्षेत्र के बुनियादी ढांचे के विस्तार के रूप में, विज्ञान और इंजीनियरिंग में तकनीकी प्रगति के रूप में हो या संगीत, ललित कला, साहित्य और आध्यात्मिकता से परिपूर्ण समृद्ध कलात्मक सांस्कृतिक संपन्नता के संबंध में हो। भारतीय संस्कृति में सद्भाव व एकता का सम्मिश्रण है और यही एकीकृत प्रणाली परिवार व समाज के संबंध को मजबूती से बांध कर रखता है जिस पर एक व्यक्ति की भावनाएं उसकी शक्ति आश्रित होती है। अपने सामुदायिक समूहों में व्यवस्था एवं सद्भाव बनाए रखने के लिए अपनी स्वयं की विनिमय प्रणाली रही है। सिंधु नदी के किनारे सिंधु घाटी सभ्यता जो 2800 ईसा पूर्व और 1800 ईसा पूर्व के बीच फली फूली एक उन्नत और समृद्ध आर्थिक व्यवस्था रही।

लगभग साढ़े तीन सहस्त्राब्दी पहले भारतीय उपमहाद्वीप को प्राचीन काल में वाणिज्यिक क्षेत्र के रूप में मान्यता मिल चुकी थी और व्यापार, शिल्प अधिशेष, कृषि उत्पादन जो भारत में पहली बार सिंधु घाटी सभ्यता में शहरी केंद्रों के उदय के साथ देखा गया। प्राचीन काल से ही भारतीय व्यापार सभी रूपों में फला फूला चाहे वह सीमित आंतरिक या लंबी दूरी का बाहरी व्यापार हो चाहे भूमि के माध्यम से हो या पानी के माध्यम से। हड़प्पा वासियों को कुशल समुद्री यात्रियों के रूप में अच्छी तरह जाना जाता रहा जो कि उनकी मोहरों तथा ताबीज पर नावों के चित्रण से स्पष्ट होता है। हड़प्पा वासियों ने ओमान, बहरीन और पश्चिम एशिया के अन्य स्थानों के साथ संपर्क स्थापित किया। जातक कथाओं सहित बौद्ध साहित्य भी समुद्री यात्राओं, जल पोतों और मिशनरियों के विदेश जाने के वृत्तांतो से भरा पड़ा है।

भारत की अधिकांश जनसंख्या गांव में निवास करती थी और यह गांव शुरुआत से स्वावलम्बी रहें। कृषि ही इनका प्रमुख व्यवसाय था जो गांव की खाद्य आवश्यकता को पूरा करता था। यह कपड़ा, खाद्य प्रसंस्करण और शिल्प जैसे उद्योग के लिए कच्चा माल भी उपलब्ध कराता था। यदि हम वर्गीकरण देखें तो किसान के अतिरिक्त नाई, बड़ई, डॉक्टर, सुनार, बुनकर आदि थे। गांव व शहरी केंद्रों में व्यापार सिक्कों के माध्यम से होता था लेकिन गांव में वस्तु विनिमय आर्थिक गतिविधियों की प्रमुख प्रणाली थी। प्राचीन भारतीय संस्कृति अपने अंदर अनेक आर्थिक गतिविधियों को संजोए हुए हैं। ऐसी अनेकों गतिविधियां धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों से उत्पन्न होती हैं। सांस्कृतिक एवं लोक उत्सव जैसे सामाजिक समारोह छोटी–छोटी आर्थिक गतिविधियों को जन्म देते हैं निश्चित रूप से भारत के गांवों में बसी संस्कृति व सभ्यता जहां एक ओर बड़ी ही खूबसूरती से आर्थिक गतिविधियों का संप्रेषण करती है वहीं स्वावलम्बन का उदाहरण प्रस्तुत करती है। भारत में सामाजिक सांस्कृतिक गतिविधियों की एक विस्तृत श्रृंखला ने कई हस्तशिल्प परंपराओं को जन्म दिया है। एनसीएईआर के अनुसार अनुमानित 47.5 लाख कारीगर सैकड़ों हस्तशिल्प वस्तुएं बनाते हैं जैसे धार्मिक कलाकृतियां, वस्त्र एवं अन्य उपयोगी वस्तुएं। ऐसी कई हुनरमंद कारीगरों ने विश्व प्रसिद्ध हस्तशिल्प बनाने के लिए अपने कौशल का विकास किया। उदाहरण स्वरूप पुरी के भगवान जगन्नाथ मंदिर में विशेष रूप से धार्मिक कार्यों के लिए पट्टा चित्र और तालियां बनाने वाले कारीगरो ने इन दोनों कलाकृतियों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध बनाने के लिए अपने कौशल का विकास किया। कुछ वर्षों से बिहार की मधुबनी पेंटिंग, पश्चिम बंगाल की कालीघाट पेंटिंग, और कर्नाटक तमिलनाडु राजस्थान और मध्य प्रदेश से विदेशी धातु शिल्प पत्थर एवम लकड़ी की नक्काशी घरेलू और अंतरराष्ट्रीय दोनों शिल्प बाजारों में लोकप्रिय हैं।

प्राचीन भारत में भारतीय, हस्तशिल्प मसाले एवं हथकरघा उत्पाद घरेलू उपभोग के साथ–साथ व्यापार के लिए उत्पादित किये जाते थे। 1700 ई. में विश्व की आय में भारत 22.6 प्रतिशत अपनी भागीदारी रखता था जो यूरोप के हिस्सों के बराबर था। लेकिन यह भागीदारी 1952 में मात्र 3.8 प्रतिशत रह गयी। इन सब के पीछे का कारण ब्रिटिश हुकूमत रही जिसने आक्रामक रूप से भारत की शिल्प परंपराओं का नाश किया। भारतीय संस्कृति एवं जीवन शैली को खंडित करने का पूरा प्रयास किया गया और एक सुनियोजित प्रयासों के माध्यम से सबसे समृद्ध संस्कृति को खंडित किया गया। 3 जुलाई 1835 को लॉर्ड मैकाले ने सुझाव दिया कि समृद्ध भारत पर स्थाई साम्राज्यवादी संप्रभुता स्थापित करने के लिए अंग्रेजों की एकमात्र राजनीतिक सफलता तब होगी जब वह भारतीयों को 'स्वाद से अंग्रेज' बना लेंगे।

निश्चित रूप से भारतीय संस्कृति अपने विविधताओं के साथ पूरे विश्व में आकर्षण व शोध का विषय रही है। भारतीय व्यंजन, लोकगीत, संगीत, कला, हस्तशिल्प, ग्रामीण जीवन और नृत्य मे आध्यात्मिकता का भाव निःसन्देह उसे लोकप्रिय बनाते हैं। उन्नत तकनीकी, प्रबंध कौशल एवं भारतीय व्यंजन को सम्मिलित कर योजना बद्ध तरीके से असंगठित क्षेत्र को और अधिक संगठित एवं लाभदायक बनाने की क्षमता रखते हैं। निश्चित रूप से वैश्वीकरण के इस दौर में इन उत्पादों का विपणन एक बड़ा अवसर प्रदान करता है और अर्थव्यवस्था को मजबूती देगा। ■

कला में भारतीयता का पुट

डॉ. नीरजा शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर
बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विवि.

मनुष्य को विश्वसाहचर्य और पारस्परिक सद्भाव के युग में प्रवेश करना है तो प्राचीन बहुमूल्य सांस्कृतिक धाती को सुरक्षित रखना ही होगा क्योंकि प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं की अमूल्य निधियां तो कला के कोष में ही इकट्ठी हैं। कला की भाषा अन्तर्राष्ट्रीय है और एक–दूसरे की भाषा से अनभिज्ञ होते हुए भी हम किसी विदेशी कला के संदेश को पढ़ सकते हैं। कला समाज और विश्व की हितैषिणी होने के अतिरिक्त व्यक्ति के कल्याण का भी माध्यम है।

प्राचीन भारतीय कला की शाश्वत स्थिति के भीतर केवल मानव की चिर भावनाओं का मूर्तरूप ही नहीं है वरन् उसकी आध्यात्मिकता की आधारशिला भी सन्निहित है। हृदय और मस्तिष्क की अचेतन अवस्था के आंतरिक सुप्त तारों को कला झंकृत करती है और उसकी भावनाओं को प्रकट करती है। कलाकार की उन भावनाओं पर सामाजिक परम्परा और सांस्कृतिक विरासत का प्रभाव पड़ता है। किसी भी सभ्यता की स्थायी सफलताओं की संरक्षिका कला ही रही है। वह समाज की आत्मकथा है। राष्ट्रीय संस्कृति के सनातन बहुमूल्य भावों, भावनाओं तथा विश्वासों को पूर्णतया और गम्भीरता से कला ही व्यक्त करती है।

भारतीय कला अपनी प्राचीनता और विविधता के लिए विख्यात है। जैसे–जैसे मानव सभ्य होता गया उसकी जीवन शैली के साथ–साथ उसका कला पक्ष भी मजबूत होता चला गया। जहां एक ओर मृदभाण्ड, भवन तथा अन्य उपयोगी सामानों के निर्माण में वृद्धि हुई, वहीं दूसरी ओर आभूषण, मूर्तिकला, सील निर्माण, गुफा, चित्रकारी आदि में परिपक्वता आयी। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में 64 कलाओं का उल्लेख मिलता है जिनका ज्ञान प्रत्येक सुसंस्कृत नागरिक के लिए अनिवार्य था। भारतीय कला को पांच विधाओं– संगीतकला, मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला तथा काव्यकला में वर्गीकृत किया गया। इन पांचों को सम्मिलित रूप से ललित कलायें कहा जाता है।

भारतीय कला की सर्वप्रमुख विशेषता धार्मिकता है। धर्म और कला का प्राचीन संस्कृतियों से अविच्छिन्न सम्बंध रहा है। धार्मिक स्मारकों, मंदिरों, चैत्यों, स्तूपों, मठों, देवी देवताओं की मूर्तियों आदि में भारतीय कला का अद्भुत उदाहरण है क्योंकि कलाकार स्वयं ही इन आध्यात्मिक आवश्यकताओं से प्रेरित हो मंदिर या मूर्ति के निर्माण में अपने जीवन को चरितार्थ समझता है। हमारी सनातन संस्कृति धर्म प्रधान रही है और इसका मूलाधार अपने इष्ट देव पर अटूट श्रद्धा। भक्त अपने देवता को सर्वशक्तिमान मानता है और वह अपने देवता की मूर्ति में इसी भाव और शक्ति की प्रतिछाया देखना चाहता है। अतः भगवान के अद्भुत रूप और अगणित पौराणिक चमत्कारों का सदृश्य प्रकट करने के प्रयास में अनेक देवी देवताओं की मूर्तियां बनने लगी।

सौन्दर्य एवं प्रेम भी कला का आधार रहा जिसे मूर्तिकला एवं चित्रकला के माध्यम से उजागर किया गया। प्रतीकात्मक भारतीय कला की दूसरी प्रमुख विशेषता है। प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात कहने की कला भारतीय कलाकार बखूबी जानते थे। अजंन्ता, एलोरा, बुद्ध की विभिन्न मुद्राओं वाली मूर्तियां एवं चित्र व संगीत के माध्यम से अपनी संस्कृत को दर्शाने का प्रयास किया है। भारतीय कलाकृति में मानव–पशु और जड़ पदार्थों का पर्याप्त स्थान है। इन सबको चित्रित करने में कलाकार का यह प्रयास रहा है कि सृष्टि के इन सभी प्रतिनिधियों को एक–सूत्र में बांधा जाए। सृष्टि का कण–कण एक ही शक्ति से अनुप्राणित है, कोई बड़ा या छोटा नहीं।

भारतीय कला की तीसरी विशेषता है पारम्परिकता। भारतीय कला में हम उस सभ्यता की अमूल्य निधियों का संचय और सांस्कृतिक तत्व पाते है। सामाजिक धारणाओं और मान्यताओं को जो किसी भी समाज की विशिष्ट और सुसंस्कृत रेखायें रही हैं। हम उस जाति की कला में सर्वदा सजीव और स्पष्ट देखते हैं। प्रत्येक सभ्यता विशेषतः भौगोलिक स्थिति और परम्परा के आधार पर विशिष्ट मान्यताओं उद्गारों और सामाजिक तथा धार्मिक क्रिया–प्रतिक्रियाओं की कड़ी जोड़ती आई है जिसे कला के माध्यम से ही मानव को कला की विरासत के रूप में उपहार दिया है।

भारतीय कला की अन्य विशेषतायें भावात्मकता उपयोगिता, अनामता आदि हैं। भारत की चाहें कोई कला ले लीजिए उसमें भारतीयता का पुट विद्यमान है। हमारी कलायें हमारी संस्कृति का आईना हैं। भारतीय कला की शाश्वत स्थिति के भीतर केवल मानव की चिरभावनाओं का उसकी सामाजिक एवं आध्यात्मिक छवि को चिन्हित करने का गुण है। भारतीय कला हमारे समाज और संस्कृति को ही प्रतिबिम्बित नहीं करती वरन् उसे अमरता भी प्रदान करती है। ■

भारतीय संस्कृति में अंतर्निहित पर्यावरण संरक्षण

डॉ. संजीव कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग
कु. मायावती रा.म. स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर

यह शाश्वत सत्य है कि भारतीय संस्कृति अपने स्वाभाविक स्वरूप में सदैव अरण्यक संस्कृति के रूप में प्रतिस्थापित रही है। भारतीय चिन्तन परम्परा में प्रकृति की उपासना एवं संरक्षण को सदैव आध्यात्मिक दायित्व के रूप में स्वीकार भी किया गया है। यह भी सत्य है कि भारतीय जीवन दर्शन तथा प्रकृति के मध्य सम्बन्ध सदैव सकारात्मक, सन्तुलित एवम वैज्ञानिक रहे हैं। इस कथन में कतई अतिशयोक्ति नहीं है कि भारत के अतिरिक्त शायद ही विश्व की कोई ऐसी संस्कृति है जहां प्रकृति के संरक्षण को संस्कार के रूप में नित्य जिया भी जाता है।

भारतीय सनातन शास्त्रों में प्राकृतिक शक्तियों के विभिन्न स्वरूपों की स्तुति भी इस बात का प्रमाण है कि प्रकृति के प्रति स्नेह और आस्था हमारे संस्कारों में बीजस्वरूप विद्यमान हैं।

भारतीय जीवन दर्शन में प्रकृति के प्रति प्रेम एवं समर्पण का मुख्य कारण यह भी है कि हमारे धार्मिक ग्रंथों में प्रकृति के अस्तित्व से मनुष्यता को सकारात्मक रूप से सहसम्बन्धित किया गया है।

ऋग्वेद का उद्घोष है कि नवीन पौधों को सतत रूप से रोपना मनुष्य का अनिवार्य सामाजिक दायित्व है। इसकी ऋचाएं देवताओं को तीन प्रमुख वर्गों में विभक्त किया करती हैं– जल, वायु और भूमि देवता। देवताओं का यह वर्गीकरण पहाड़ों, पौधों, वृक्षों, मरुस्थलों, पर्वतों, नदियों, महासागरों झीलों, जीव–जंतुओं, चट्टानों, खनिज पदार्थों, जलवायु, मौसम और ऋतुओं आदि का प्रतिनिधित्व करता है। ये इस बात का साक्ष्य भी है कि भारतीय संस्कृति में प्रकृति पूजन को प्रकृति संरक्षण के रूप में आध्यात्मिक मान्यता प्राप्त है।

अथर्ववेद में विद्वानों ने वर्षों पूर्व उद्घोषित किया था, 'माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्याः' अर्थात् वसुंधरा जननी है, हम सब उसके पुत्र हैं। ऋग्वेद (1/158/1, 7/35/11) तथा अथर्ववेद (10/9/12) में दिव्य, पार्थिव और जलीय देवों से कल्याण की कामना स्पष्ट रूप से उल्लिखित है।

वृक्षों के महत्व को परिभाषित करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता के दसवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण पीपल को अपना अवतार घोषित करते हैं। वह स्वयं कहते हैं–

'अश्वत्थ : सर्व वृक्षा वृक्षाणां अर्थात् वृक्षों में पीपल मैं हूं..।'

आचार्य वेदांतदेशिक ने तात्पर्यचंद्रिका में स्पष्ट लिखा है कि पीपल की महिमा स्वर्ग में स्थित पारिजात आदि वृक्षों से भी ज्यादा है। अतः भगवान कृष्ण ने स्वयं को पारिजात नहीं बल्कि अश्वत्थ (पीपल) ही कहा, क्योंकि सारी वनस्पतियों में पीपल की सर्वश्रेष्ठता निर्विवाद है।

कालिदास, सूरदास, रसखान, तुलसीदास, कबीरदास ने किसी औपचारिक संस्था से शिक्षा प्राप्त नहीं की, लेकिन अपनी रचनाओं में प्रकृति को इस दैवीय स्वरूप में प्रस्तुत किया कि इनकी रचनाएं आज भी मानव जाति को दिशा प्रदान कर रही हैं। कालिदास ने पर्यावरण संरक्षण के विचार को मेघदूत तथा अभिज्ञान शाकुन्तलम में दर्शाया है। रामायण, महाभारत तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों, उपनिषदों में प्रकृति की प्रासंगिकता एवम उपादेयता का गहन वर्णन किया गया है।

छान्दोग्यउपनिषद् में उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से आत्मा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वृक्ष जीवात्मा से ओतप्रोत होते हैं और मनुष्यों की भांति सुख–दुःख की अनुभूति करते हैं। महान भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु ने भी यह सिद्ध किया था कि पेड़–पौधों तथा वनस्पति में भी जीवन होता है,ये भी हमारी तरह ही प्रेम एवं पीड़ा महसूस करते हैं।

वैदिक दर्शन में एक वृक्ष की मनुष्य के दस पुत्रों से तुलना की गई है–

'दशकूप समावापीः दशवापी समोह्रदः।
दशह्रद समरूपुत्रो दशपत्र समोद्रुमः।।

हमारे ऋषि जानते थे कि पृथ्वी का आधार जल और जंगल है इसलिए उन्होंने पृथ्वी की रक्षा के लिए वृक्ष और जल को महत्वपूर्ण मानते हुए कहा है– वृक्ष जल है, जल अन्न है, अन्न जीवन है। जंगल को हमारे ऋषि आनंददायक कहते हैं– 'अरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु' यही कारण है कि हिन्दू जीवन के चार महत्वपूर्ण आश्रमों में से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास का सीधा संबंध वनों से ही है।

हम कह सकते हैं कि इन्हीं वनों में हमारी सांस्कृतिक विरासत का संवर्धन हुआ है। हिन्दू संस्कृति में वृक्ष को देवता मानकर पूजा करने का विधान है. वृक्षों की पूजा करने के विधान के कारण ही हिन्दू स्वभाव से वृक्षों का संरक्षक हो जाता है। सम्राट विक्रमादित्य और अशोक के शासनकाल में वनों की रक्षा सर्वोपरि थी। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में सम्राट अशोक ने प्रकृति की महत्ता को स्वीकारते हुए वन्य जीव जन्तुओं

के शिकार पर प्रतिबन्ध लगाया जो आज भी अशोक के शिलालेखों में अंकित है। भारत में आर्यों के आगमन से पूर्व सिंधु घाटी की सभ्यता में प्राप्त मुहरों पर अंकित चित्रों से स्पष्ट है कि सिन्धु घाटी के निवासी वृक्षों की पूजा किया करते थे। ज्ञान और नीतिपरक पंचतंत्र की कहानियों तथा जातक कथाओं में वन्य जीवन सें संबंधित अनेकानेक प्रसंगों को उद्घाटित किया जाना हमारे संस्कारों का प्रत्यक्ष प्रमाण है। आचार्य चाणक्य ने भी आदर्श शासन व्यवस्था में अनिवार्य रूप से अरण्यपालों की नियुक्ति करने की बात कही है।

जलस्रातों का भी वैदिक धर्म में बहुत महत्व रहा है। भारतीय सभ्यता में बिना नदी या ताल के गांव–नगर के अस्तित्व की कल्पना की ही नहीं गयी है। ऐसे गांव जो नदी किनारे नहीं थे, वहां ग्रामीणों द्वारा तालाबों का निर्माण किया जाना वैदिक चिंतन को प्रतिस्थापित करता है। अथर्ववेद में बताया गया है कि आवास के समीप शुद्ध जलयुक्त जलाशय अनिवार्य रुप से होना चाहिए.जल दीर्घायु प्रदायक, कल्याणकारक, सुखमय और प्राणरक्षक होता है।

समस्त भारतीय पर्व जैसे; मकर संक्रान्ति, वसंत पंचमी, महाशिवरात्रि, होली, नवरात्र, गुड़ी पड़वा, ओणम, दीपावली, कार्तिक पूर्णिमा, शरद पूर्णिमा, अन्नकूट, देव प्रबोधिनी एकादशी, हरियाली तीज, गंगा दशहरा आदि सभी पर्वों के आयोजन में प्रकृति के संरक्षण और संवर्धन का संदेश ही नीहित है। वट–सावित्री पूजन में जहां वट वृक्ष की पूजा होती है। वहीं छठ जैसे त्योहार में नदियों की साफ–सफाई की जाती है।

भारतीय संस्कृति में धर्म और पर्यावरण में एक गहरा संबंध है तथा यहां पल्लवित सभी धर्मों का दृष्टिकोण प्रकृति के प्रति सकारात्मक ही रहा है।

सनातन चिंतन के अनुसार, जीवन पाँच तत्त्वों– क्षिति (पृथ्वी), जल, पावक (अग्नि), गगन (आकाश), समीर (वायु) से मिलकर बना है। पृथ्वी को देवी का रूप माना गया है। इसके अलावा इसके विभिन्न अवयव जैसे– पर्वत, नदी, जंगल, तालाब, वृक्ष, पशु–पक्षी आदि सभी को दैवीय कथाओं व पुराणों से जोड़कर देखा जाता है। भगवद्गीता में अनेक स्थानों पर कहा गया है कि ईश्वर सर्वव्यापी है तथा विभिन्न रूपों में सभी प्राणियों में विद्यमान है इसलिये व्यक्ति को सभी जीवों की रक्षा करनी चाहिये।

वैदिक धर्म में कर्म की प्रधानता पर बल दिया जाता है और यह विश्वास किया जाता है कि व्यक्ति को उसके कर्मों के अनुसार ही फल प्राप्त होता है। इसके अलावा व्यक्ति के कर्मों का प्रभाव प्रकृति पर भी पड़ता है अतः मानव जाति को प्रकृति तथा उसके विभिन्न जीवों की रक्षा करना चाहिये।

वैदिक धर्म का प्रकृति के साथ कितना गहरा रिश्ता है, इसे इस बात से समझा जा सकता है कि दुनिया के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद का प्रथम मंत्र ही अग्नि की स्तुति में रचा गया है। हिन्दुत्व स्वयं में वैज्ञानिक जीवन पद्धति है। इसकी प्रत्येक परम्परा के पीछे कोई न कोई वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है। इन रहस्यों को प्रकट करने का कार्य होना चाहिए। सनातन धर्म के संबंध में एक बात दुनिया मानती है कि इसका दर्शन 'जियो और जीने दो' के सिद्धांत पर आधारित है। यह विशेषता किसी अन्य धर्म में नहीं है। सनातन संस्कृति के सह अस्तित्व का सिद्धांत ही भारतीयों को प्रकृति के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है। वैदिक वाङ्मयों में प्रकृति के प्रत्येक अवयव के संरक्षण और संवर्धन के निर्देश मिलते हैं। वैदिक धर्म में पुनर्जन्म पर विश्वास किया जाता है। इसके अनुसार, मृत्यु के बाद कोई व्यक्ति पृथ्वी पर विद्यमान किस जीव के रूप में जन्म लेगा यह उसके कर्मों पर निर्भर करता है। इसलिये सभी जीवों के प्रति अहिंसा वैदिक दर्शन का मुख्य सिद्धांत है।

भारतीय दर्शन के प्रेरित जैन संस्कृति में भी अहिंसा को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है तथा किसी भी जीव–जंतु, वनस्पति आदि को नुकसान पहुँचाना वर्जित माना गया है। इनके अनुसार पंचमहाव्रत है–सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। इनके अनुयायी जीवन के सभी आयामों में इन पंचमहाव्रतों का अनुपालन करते हैं। अतः जैन चिंतन धारा के अनुयायियों के लिये प्रकृति व इसके सभी जीव जंतुओं को सामान माना गया है तथा इनका संरक्षण और इनके प्रति समान व्यवहार करना इस संस्कृति की मूल शिक्षा है।

बौद्ध दर्शन भी पूर्णतः प्रेम, सद्भाव तथा अहिंसा पर आधारित है। ये दर्शन 'प्रतीत्यसमुत्पाद' पर आधारित है जिसे करण–कारण का सिद्धांत भी कहते हैं। इसके अनुसार, प्रत्येक कार्य का प्रभाव होता है। इसे वैदिक संस्कृति के कर्म के सिद्धांत के समान माना जा सकता है अर्थात् मानव के व्यवहार का प्रभाव उसके पर्यावरण पर पड़ता है। बौद्ध चिंतन साधारण जीवनशैली को बढ़ावा देता है, जो सतत–पोषणीय विकास के लिये आवश्यक है। यह संसाधनों के अतिदोहन को वर्जित करता है। बौद्ध दर्शन सभी प्राकृतिक जीवों की परस्पर निर्भरता में विश्वास करता है और इसमें सभी जीव–जंतु, वनस्पतियाँ, नदी, पर्वत, जंगल आदि शामिल हैं।

परन्तु आज मनुष्य की भौतिकवादी आकांक्षाओं ने संस्कृति और संस्कारों के उस अनूठे ताने बाने को तोड़ दिया है। आज हम निज़ी विलासता में प्रकृति के प्रति अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं की मान मर्यादाओं और भावनाओं को जीवन से तिरोहित करते जा रहे है। आधुनिकता के नाम पर हमारी प्रकृति–उपासना की आस्थाएं समाप्त हो रही हैं और यदि शेष भी हैं तो मात्र प्रतीकात्मक औपचारिकताओं के रूप में हैं। संकीर्ण जीवन शैली के कारण आज बरगद, पीपल, नीम, आंवला आदि का महत्व कम होता जा रहा है। गोचर भूमि पर अतिक्रमण कर आवासीय भवन खड़े किए जा रहे है। पशु पक्षियों की जातियाँ लुप्त होती जा रही हैं। हमारे जल स्त्रोत अब शहर के शौचालय बनते जा रहे है। जिन नदियों को हम मातृवत् पूजते रहे हैं, अब उनमें कल–कारखानों का प्रदूषित जल और शहर का मल प्रवाहित हो रहा है। सच कहूं तो यदि आज भी हमारी पुरातन पर्यावरण संरक्षण की प्रथाओं को सामाजिक स्तर पर प्रधानता देते हुए, इन परम्पराओं का अनुगमन दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ किया जाए तो पर्यावरण संतुलन तथा संरक्षण को पुनः प्रवाह दिया जा सकता है। यदि मनुष्य पुनः धरती को मातृवत् मानकर तथा जल, हवा, नदियों, पर्वत, वृक्ष और जलाशयों को पूजनीय मानकर उनकी सुरक्षा एवं संरक्षण की व्यवस्था करे तो वेदों की वह आदर्श परिकल्पना साकार हो सकेगी जो ये कहती है कि यदि मनुष्य शुद्ध वायु में श्वास ले, शुद्ध जलपान करे, शुद्ध भोजन करे, शुद्ध मिट्टी में खेले कूदें और कृषि करे, तब उसकी आयु ''जीवेम् शरदः शतम्'' हो सकती है। ■

संस्कृति को समृद्ध बनाती भारतीय भाषाएं

डॉ. गीता पांडेय
एसोसिएट प्रोफेसर
एस. डी. पी. जी. कॉलेज, गाजियाबाद

विविधताओं से भरा देश भारत बरसों से अपनी संस्कृति को धरोहर के रूप में संजोए दुनिया के नक्शे में अपनी विलग और बहुरंगी पहचान बनाए हुए है। भाषाओं का धनी देश भारत आज यह भी मानता है कि शब्द कभी मरते नहीं, वे शाश्वत् होते हैं– शब्द सदियों से अपनी अर्थवत्ता संजोए हुए हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से बंगाल और इससे भी आगे अरुणांचल प्रदेश तक भारतीय भाषाएं भारत के इतिहास की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा का अवलोकन कराती है, समय एवं क्षेत्रविशेष ने भाषा को नव–नव रूप प्रदान करके हमारे समक्ष रखा है। 'कोस–कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बाणी' यह कहावत सही चरितार्थ होती है।

वैसे भी भारतीय भाषाएं भारत के ज्ञान–क्षेत्र की अनंत सूची प्रदान करने में सक्षम है। अर्वाचीन समय के हमारे चारों वेद, 108 उपनिषद्, 18 पुराण एवं महागाथाएं सामायण एवं महाभारत तथा श्रीमद्भागवतगीता, देववाणी संस्कृत में लिखे गए हैं। उसके बाद बौद्ध धर्म से जुड़ी जातक कथाएं हमें पालि भाषा मिलती हैं, जैन मुनियों ने अपने साहित्य सृजन हेतु संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश का सहारा लिया। इन प्रमुख स्थितियों की चर्चा करने का यहां यह भी एक उद्देश्य है कि इनके माध्यम से भारत की तत्कालीन खुशहाली, सम्पन्नता, पीड़ा, विषमता ही नहीं उद्घाटित होती है वरन् इनके द्वारा प्राप्त अनुभवों से सामने वाले को एक दृष्टि एवं मार्गदर्शन भी प्राप्त होता है, जिससे वर्तमान समाज आत्मिक उन्नति के मार्ग में लाभान्वित होता रहा है।

आज जब भारत भर में फैले संग्रहालय, पुस्तकालय, शिलालेखों में भाषा सम्बंधी विविध प्रमाण सुरक्षित एवं संग्रहित किए गए हैं, जहां जिज्ञासु–ज्ञान पिपासु जानकर इससे लाभान्वित होते आए हैं।

यदि हम ब्रज और अवधी जैसी भाषाओं की अकेले ही चर्चा करने में आए तो हमें ज्ञात हो जाएगा कि भक्ति काल को 'स्वर्ण–युग' क्यों कहा जाता था, राम के आदर्श रूप एवं श्रीकृष्ण की भक्ति की चरम स्थिति लाने में भाषा का गाम्भीर्य एवं माधुर्य रूप दोनों ही प्रभावकारी ढंग से काम आया है। भाषा की तत्कालीन प्राप्त कोमलकांत दिवालियों और गम्भीरता ने मनुष्य जाति को आध्यात्मिकता की राह तक दिखाई है, क्या ये भाषा के लिए गौरव की बात नहीं है? दक्षिण के आलवार संतों की भक्ति प्राकट्य की भाषा को लें अथवा बंगाल में रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'गीतांजलि' की भाषा को, विविधता के चहुं ओर दर्शन होते हैं।

आज के सन्दर्भ में देखे तो मालूम पड़ता है कि आधुनिक आर्य भाषाओं का तो जन्म ही अपभ्रंश के अनेक क्षेत्रीय रूपों से माना जाता है। जिसमें भारत की पश्चिमी हिंदी से लेकर पूर्वी हिंदी तक का क्षेत्र शामिल है। पश्चिमी हिंदी में खड़ी बोली का आज बोलबाला है। खड़ी बोली के प्रयोग एवं फैलाव से सभी परिचित हैं। इसके अलावा आज हिंदी भाषा की इतनी बोलियां है, जिनमें क्रमशः भारतीय भाषाएं, परम्पराएं, संस्कार, संस्कृति, लोक–कला, लोक–विश्वास, धर्म, आध्यात्म, राजनीति, अर्थशास्त्र, साहित्य, संगीत, इतिहास इत्यादि अनेक क्षेत्रों का ज्ञान भरा पड़ा है। हमारा लोक जीवन, ग्राम्य जीवन, शहरी जीवन, हमारा अतीत इन्हीं बोलियों का आश्रम पाकर सुरक्षित एंव मुखरित हुआ है। दरअसल हमारी सांस्कृतिक जड़ें कितनी मजबूत है, यह भी इनके द्वारा ज्ञात होता है। हमारा देश गांवों का देश रहा है तथा इन बोलियों की गंध से भारतीय समाज परिचित होता है। कहीं भाषा के भीतर कोई बोली का स्वाद आनंद से भर देता है तो कहीं किसी भाषा का अकेला प्रारूप भारत की भाषा को विविधता के परचम तक पहुंचा देता है और यह स्थिति अनुभूति के किसी भी अंश को अधूरापन नहीं प्रदान करती है, भाषा अपने विषय को तथा अपने उद्देश्य को पूर्णता प्रदान करती है।

जहां एक ओर भाषा एंव बोलियों के इतिहास से विश्वास पुष्ट होते हैं। वहीं भारतीय भाषाओं की विविधता द्वारा हिन्दी शब्दकोष भी समृद्धि पाता है। हमारी भारतीय सभ्यता कितनी सभ्य एवं पुरातन है यह भी इन भारतीय भाषाओं को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है।

इतना सब होने के बावजूद यहां यह कहना भी जरूरी हो जाता है कि आज खड़ी बोली से आगे निकलकर 'हिंग्लिस' हिन्दी का प्रचलन देखने में आता है जिसमें भारतीय भाषाएं अपने विविध प्रारूप में नजर आती है, इस तरह की भाषा तब भी अपने क्षेत्र एवं मनुष्य के परिवेश को प्रस्तुत कर जाती है जहां अपने देश की भाषाई–मिट्टी की गंध छिपाए नहीं छिपती है और भाषागत आकर्षण बना रहता है। इससे आगे एक सच ये भी है कि कतिपय भारतीय भाषाएं आज अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही हैं लेकिन उसमें भी सुखद यह स्थिति है कि हमारी सरकारें, हमारे शोधकर्ता, ज्ञान के पिपासु अध्येता इस तरह की भाषा को हाशिए से फ्रंटलाईन में लाने के लिए सतत् प्रयासरत हैं और इस देश की यह एक बड़ी खूबसूरती है कि भारतीय भाषाएं आज भी अपने भीतर की मिठास, गंध, उपयोगिता एवं आकर्षण को स्वयं में समेटे हुए है। हम आज एक दूसरे की भाषा का सम्मान करने वाले लोग बने हैं। परस्पर एक–दूसरे की भाषा को समझने का भाव रखते हैं, अपने ज्ञान एवं विचार संप्रेषण में कहीं कमी नहीं पाते हैं और भाषाई अस्मिता को स्वीकार करते हैं, चाहे प्रकट रूप से करें या अप्रकट रूप से।

अन्ततः संस्कृति को समृद्ध बनाती भारतीय भाषाओं का सम्मान करते हुए भारत देश की हृदय से जय हो। ■

हिन्दू जीवन दर्शन का आधार : पुरुषार्थ

डॉ. शैलजा शर्मा
सहायक अध्यापिका

भारतीय विचारकों ने मनुष्य के जीवन को आध्यात्मिक, भौतिक और नैतिक दृष्टि से उन्नत करने में निमित्त 'पुरुषार्थ' के नाम से अपने दार्शनिक विचारों की नियोजना और व्याख्या की थी। मनुष्य का सर्वांगीण विकास पुरुषार्थ के माध्यम से होता है। पुरुषार्थ मनुष्य का वह आधार है जिसके अनुगमन से वह अपना जीवन जीता है तथा विभिन्न कर्त्तव्यों का मनोनिवेशपूर्वक पालन करता है। वह भौतिक पदार्थों, सन्तानों और सद्गुणों का भोग करने के बाद जगत् की परिधि से बाहर आकर भक्ति का मार्ग अपनाता और मुक्ति की ओर उन्मुख होता है। यथा–

पुरुषैरथ्यर्ते इति पुरुषार्थ अर्थात् अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना ही पुरुषार्थ है। हिन्दू जीवन दर्शन में चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदर्श जीवन स्थिति के प्रतीक है। जीवन की इस व्यवस्था के अन्तर्गत मानव जीवन के अधिकारों और उत्तरदायित्वों का महत्वपूर्ण समन्वय किया गया है। इसी समन्वय द्वारा ही जीवन की श्रेष्ठ आदर्श स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय परम्परा में जीवन का ध्येय पुरुषार्थ को ही माना गया है। प्रत्येक व्यक्ति को धर्म का ज्ञान होना चाहिए तभी कार्य में कुशलता आती है। कार्य कुशलता से ही व्यक्ति जीवन में अर्थ अर्जित कर पाता है। काम और अर्थ से इस संसार को भोगते हुए मोक्ष की कामना करनी चाहिए। महर्षि मनु पुरुषार्थ चतुष्टय के प्रतिपादक हैं जिसकी व्याख्या उन्होंने मनुस्मृति में की है। वात्स्यायन भी मनु के पुरुषार्थ के समर्थक हैं परन्तु वे मोक्ष तथा परलोक की अपेक्षा धर्म, अर्थ, काम पर आधारित सांसारिक जीवन को सर्वोपरि मानते हैं। योगवशिष्ठ के अनुसार सद्जनों और शास्त्र के उपदेश अनुसार चित्त का वितरण ही पुरुषार्थ कहलाता है। वस्तुतः इन पुरुषार्थों ने ही भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता के साथ भौतिकता का एक अद्भुत समन्वय स्थापित किया है। चारों पुरुषार्थ मनुष्य के चार उद्देश्य है।

धर्म :- धारयति इति धर्म : अर्थात् जीवन में जो धारण करने योग्य है वही धर्म है। धर्म कोई अंधविश्वास या रुढ़िवादिता नहीं वरन् वह व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करने तथा जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। धर्म मनुष्य को सन्मार्ग का दिग्दर्शन कराता है। धर्म भारतीय संस्कृति का मूल है। इसके माध्यम से मनुष्य नैतिक सिद्वांतों, विवेकशील प्रवृत्तियों ओर न्यायप्रधान क्रियाओं को सही रूप से समझने और उनका अनुगमन करता है। शास्त्रों में धर्म के 3 प्रकार है :– (1) सामान्य धर्म (2) विशिष्ट धर्म (3) आपद्धर्म। कणाद ने वैशेषिक दर्शन में कहा है– यतो अभ्युदयानि : श्रेयससिद्धिः सः धर्म अर्थात् अभ्युदय से लौकिक उन्नति तथा निःश्रेयस से पारलौकिक उन्नति एवं कल्याण का बोध होता है। महाभारत के अनुसार धर्म वहीं है जो किसी को कष्ट नहीं देता है। धर्म में लोककल्याण की भावना निहित होती है। जो व्यक्ति धर्म का सम्मान करता है धर्म उस व्यक्ति की रक्षा करता है। अतः जीवन में संयम बोध का ज्ञान होना, बिना जीवन में संयम और अनुशासन के मनुष्य सही प्रकार से अर्थ और सामाजिक निर्वहन करने में असफल रहता है। धर्मानुकूल आचरण का ज्ञान प्राप्त करना ही प्रथम पुरुषार्थ धर्म कहलाता है।

अर्थ - अर्थ से तात्पर्य है 'धन'। वस्तुतः अर्थ का अभिप्राय उन सभी उपकरणों अथवा भौतिक साधनों से है जो व्यक्ति को समस्त सांसारिक सुख उपलब्ध कराते हैं। मनुष्य को अपने जीवन में अनेक प्रकार के कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए अर्थ की आवश्यकता पड़ती है। भूमि, धन, पशु, मित्र, विद्या, कला व कृषि आदि अर्थ की श्रेणी में आते हैं। आचार्य वात्स्यायन कहते हैं– विद्या, भूमि, हिरण्य, पशु धान्य माण्डोपस्कर मित्रादि नामार्जन मर्जितस्य विवर्धनमर्थः अर्थात् विद्या, सोना, चांदी, धन, धान्य, गृहस्थी का सामान मित्र का अर्जन एवं जो कुछ प्राप्त हुआ है या अर्जित हुआ है सब अर्थ है। अर्थ को धर्म के पश्चात इसलिए स्थान दिया है क्योंकि धर्म को समझे बिना अर्थ की प्राप्ति समाज में अनैतिकता को बढ़ा सकती है।

काम :- काम मनुष्य का तीसरा पुरुषार्थ है। व्यक्ति की सांसारिक कामनायें, वासनाजन्य प्रवृत्तियां तथा आसकित मूलक वृत्तियां काम के अन्तर्गत आती हैं। काम मनुष्य जीवन की सहज प्रवृति है। मनुष्य की मानसिक शारीरिक और इन्द्रिय सुख से सम्बद्ध है। मनुष्य की मानसिक, शारीरिक और इन्द्रियपरक आनन्दानुभूति काम के माध्यम से होती है। काम की अतिवादिता और मनुष्य की कामुकता को अवरुद्ध करने के लिए उस पर धर्म का अंकुश लगाया गया है ताकि मनुष्य अपने जीवन में नैतिकता, सदाचारिता और शुद्धता का निर्माणकर सके।

मोक्ष :- मनुष्य के पुरुषार्थ की अंतिम और चरम परिणति 'मोक्ष' है। सांसारिक बंधनों से मुक्त होना ही मोक्ष है। मोक्ष प्राप्ति के तीन आधार माने गये हैं – कर्म, ज्ञान और भक्ति साधारण व्यक्ति अपने सभी दायित्वों, कर्त्तव्यों और कर्मों को मनोनिवेश पूर्वक करके मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर होता है। अपनी समस्त इच्छाओं अभिलाषाओं को त्यागकर और फल की आशा किए बिना अपने को ईश्वर के प्रति उत्सर्ग कर देता है। ऐसी स्थिति में वह सुख–दुख, ऊंच–नीच अच्छा बुराऔर जन्म मृत्यु सभी भूल जाता है और मोक्ष की ओर प्रवृत्त हो जाता है।

मनुष्य के व्यक्तित्व का उत्कर्ष पुरुषार्थ (धर्म, काम, मोक्ष) से ही सम्भव रहा है। उसके जीवन के विभिन्न भागों में पुरुषार्थ का योग रहा तथा उसके संयोग से व्यक्ति आदर्श बनता रहा। वह अपने विभिन्न कर्मों और कर्त्तव्यों का सम्पादन पुरुषार्थ के संयोग से करता है तथा इसी के माध्यम से अपने विविध उत्तरदायित्वों को निष्ठापूर्वक कर सकने में समर्थ होता है। संयम, नियम और अनुशासन का जीवन उसके कर्तव्यपूर्ण पुरुषार्थ का ही प्रभाव है। ■

भारतीय संस्कृति में कर्म की प्रधानता

आर.एस.डी चातक
(शिक्षाविद् एंव रचनाकार)

मानव की वह अमूल्य निधि, जो उसको मानव के वर्ग में स्थापित करती है, उसकी संस्कृति कहलाती है। संस्कृति ही एक ऐसा उपयुक्त वातावरण है जो मानव को समाज से सामंजस्य स्थापित करने में आधार उपलब्ध कराता है। संस्कृति के माध्यम से ही प्राकृतिक पर्यावरण को जीवन के अनुकूल बनाने की क्षमता प्राप्त की जा सकती है। संस्कृति ही एक मानव को दूसरे मानव से, एक समूह को दूसरे समूह से और एक समाज को दूसरे समाज से पृथक करती है।

यद्यपि सीखे हुए व्यवहारों की सम्पूर्णता को ही संस्कृति कहा जाता है तथापि संस्कृति की अवधारणा का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसे संक्षिप्त भाषा में सीमित करना पूर्णतया असम्भव है.मानव द्वारा अप्रभावित प्राकृतिक शक्तियों से पृथक चारों ओर से जो मानवीय परिस्थितियाँ हम को प्रभावित करती हैं उन सबकी सम्पूर्णता को संस्कृति कहा जाता है और इस प्रकार संस्कृति की इसी सुदृढ़ परिस्थिति का नाम सांस्कृतिक पर्यावरण है। अन्य शब्दों में संस्कृति एक ऐसी अक्षुण्ण और अपेक्षाकृत स्थायी व्यवस्था है जिसमें हम जीवन के प्रतिमानों,व्यवहार के ढंगों,विभिन्न भौतिक और अभौतिक प्रतीकों, परम्पराओं, विचारों, सामाजिक मूल्यों, मानवीय क्रियाओं और आविष्कारों को समाहित करते हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष विषयक घटनाओं को संस्कृति में समाहित करने का कार्य भी इसी उद्देश्य से किया गया कि मानव जीवन के दैनिक आचार–विचार, जीवन–शैली तथा कार्य–व्यवहार उसकी संस्कृति को परिष्कृत कर सकें। मानव समाज के धार्मिक, दार्शनिक, कलात्मक, नीतिगत विषयक कार्य–कलापों, परम्परागत प्रथाओं और खान–पान, संस्कार इत्यादि के समन्वय को संस्कृति कहा गया यद्यपि कतिपय विद्वान संस्कार के परिवर्त्तित स्वरुप को ही संस्कृति स्वीकारते हैं।

भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति है। यह संस्कृति आदिकाल से ही अपने परम्परागत अस्तित्व के साथ अजर अमर बनी हुई है जब कि अन्य देशों की संस्कृति समय के साथ साथ परिवर्त्तित होती रही है, नष्ट होती रही है। भारतीय संस्कृति की उदारता तथा समन्वयवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को अपने में समाहित तो किया किन्तु अपने मूल अस्तित्व को सुरक्षित भी रखा इसीलिए पाश्चात्य विद्वान उनके अपने देश की संस्कृति को समझने के लिए भारतीय संस्कृति को पहले समझने की प्राथमिकता देते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय संस्कृति का महत्त्व वैश्विक–स्तर पर अपनी परिपूर्ण व्यापकता के लिए सक्षम और सर्वोत्तम है।

भारतीय संस्कृति की विशेषताओं में उसकी प्राचीनता, निरन्तरता, ग्रहणशीलता, अनेकता में एकता और आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का समन्वय ही उसको सर्वश्रेष्ठ संस्कृति के स्थान पर स्थापित करता है। इस स्थापन कार्य के मूल में मानव के वे विशुद्ध और सर्वमान्य कर्म हैं जो उसे परिष्कृत और सर्वथा प्रासंगिक सिद्ध करते हैं। संस्कृति कोई निराधार कल्पना नहीं अपितु सत्कर्मो का वह समुच्चय है जो भारतीय साहित्य द्वारा सर्वथा तथ्य सम्मत अनुमोदित होता है। वैदिक मान्यताओं और शास्त्र सम्मत सिद्धान्तों का अनुसरण करने वाले वे धार्मिक और नैतिक कर्म जो प्राणि–जगत की शान्ति के लिए आदर्श हैं,जिनका क्रियान्वित स्वरुप जब स्थायी रूप में सर्व ग्राह्य और सर्वथा विशुद्ध स्वरुप में मानव जगत के समक्ष प्रस्तुत होता है तो उसे उसका सांस्कृतिक परिवेश कहा जा सकता है.दूसरे शब्दों में भारतीय संस्कृति के मूल में वे ही कर्म प्रधान होते हैं जो मानव को मानव से सम्बद्ध करके उसे मानवता का अलंकरण प्रदान करते हैं।

वैदिक संस्कारों से युक्त विशुद्ध और सुनियोजित कर्मों का स्थायी समुच्चय ही वैदिक संस्कृति कहलाता है.मानव को मानवता की कोटि में स्थापित करने वाले वे कर्म जो सर्वथा 'सर्वजन हिताय' की व्यापक भावना से समन्वित होते हैं, मानव संस्कृति के मूल कहलाते हैं और सार्वभौमिक सिद्धान्त में जो भारतीय जीवन दर्शन के समस्त संस्कारों, संस्कृतियों, सर्वग्राह्य आदर्शों के लिए समन्वित कर्मों के जो प्रतिमान हैं वे भारतीय संस्कृति के महाप्राण कहे जा सकते हैं या यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि भारतीय संस्कृति की स्थिति के मूल में मानव के सद्धर्म और सत्कर्म ही हैं जो उसे व्यापक और प्रेरणाप्रद स्वरुप प्रदान करते हैं।

भारतीय जीवन परम्परा और उसके व्यापक सिद्धान्त जिस कारण से उसे पाश्चात्य सिद्धान्तों से पृथक करते हैं वही कारण भारतीय संस्कृति की आधार शिला हैं और यह आधार शिला वेद–शास्त्र सम्मत आदर्श कर्मों से ही प्रतिष्ठित की जा सकती है। हमारे कर्म ही हमारी संस्कृति को पुष्पित पल्ल्वित करते हैं और उसको अक्षुण्ण रखने में सुदृढ़ आधार बनते हैं। संस्कृति के दो अभिन्न पक्ष हैं–एक यह कि हमारा कर्मयोग संस्कृति के सापेक्ष हो अथवा दूसरा यह कि हम इतने सक्षम, योग्य और ज्ञान–विज्ञान में निष्णात हों कि हमारे कर्म स्वयं संस्कृति का स्वरुप ले सकें क्योंकि हमारी संस्कृति अनेकों

महान पुरुषों के कर्मों का अनूठा संविधान है जो या तो इतिहास बना देता है या बन जाता है।

भौतिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति में सन्नद्ध मानव यदि धार्मिक और नैतिक मूल्यों का अनुपालन करता है तो उसका यह नियमन उसे आध्यात्मिकता के सन्निकट स्थापित करने में विशेष सहयोगी सिद्ध होता है। जीवन यापन हेतु मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता का पोषण भौतिक कार्यो से ही सम्भव है और यदि इस आवश्यकता में लिप्सा, तृष्णा, वैमनस्य, प्रतिशोध, अतिसंग्रह जैसे निरा स्वार्थी कर्म सम्मिलित नहीं हैं तो वे कर्म मानव को उसकी संस्कृति के संरक्षण में अभूतपूर्व योगदान देते हैं। दूसरे शब्दों में किसी भी संस्कृति का उत्थान, अनुपालन, संवर्धन, परिष्करण, स्थायी प्रतिष्ठापन बिना कर्म के नहीं हो सकता क्योंकि यदि कर्मों का अभाव हो गया तो संस्कृति एक निराधार कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगी।

यदि यह कहा जाय कि हमारे कर्म ही संस्कृति के स्वरुप हैं तो अनुचित भी न होगा। हमारे कर्मों में जब तक सात्त्विक प्रवृत्ति का समावेश है तभी तक हमारी संस्कृति मानवीय संस्कृति का प्रत्यक्ष मूर्त्तरूप मानी जा सकती है। यदि हमारे कर्मों में अमानवीय मान्यतायें सम्मिलित हो गईं, हमारे आचार–विचार मानवीय संवेदना के विरुद्ध मात्र निन्द्य और हिंस्र कर्मों के प्रतीक बन गये तो हम पाशविक संस्कृति के सबल सम्पूरक बन कर रह जायेंगे। पाशविक या पैशाचिक प्रवृत्ति से अभिभूत कर्मों का परिणाम कभी संस्कृति की परिभाषा में समाविष्ट नहीं हो सकता।

भारत को अखण्ड, समृद्ध, प्रभुता से सम्पन्न, सर्वांगीण विकसित और आदर्श स्थान पर स्थापित करने वाले कर्मों के समुच्चय की विशुद्ध सारिणी ही भारतीय संस्कृति का पर्याय है। यही सारिणी सनातन से अक्षुण्ण वैदिक मान्यताओं का प्रतिरूप भी है। जिन कर्मों से भारत वास्तव में अपने शीर्षक को आदर्श बनाने में सक्षम है वे ही कर्म हमारी भारतीय संस्कृति के महाप्राण हैं। ये कर्म जब तक महाप्राण के रूप में विशुद्ध और स्थिर हैं तभी तक भारतीय संस्कृति जीवित है। इसी लिए भारतीय संस्कृति में कर्म की प्रधानता को श्रेष्ठ आवश्यक समझ कर प्रत्येक मानव को अपने कर्मों में शुचिता और सर्वग्राह्य का आदर्श प्रस्तुत करते रहना है। हमको ऐसे कर्म करने हैं जो हमारी मानवीय संस्कृति को स्थायी और सुदृढ़ बनाने में सहायक हों। भारत का मानव जब तक अपनी संस्कृति को परिष्कृत और सुदृढ़ रखने में समर्थ रहेगा तब तक समष्टि रूप में भारतीय संस्कृति का स्वरुप सर्वदा स्वच्छ, समृद्ध और सर्वग्राह्य बना रहेगा। भारतीय संस्कृति जिस प्राचीनता और ग्रहणशीलता के कारण हमारी अनेकता में भी एकता का संदेश देती है उस संदेश को क्रियान्वित करने के लिए हमारे कर्मों में उन्हीं संस्कारों को समाहित करना होगा कि जिनके सम्बल से हम मानव की कोटि में स्थापित होने का ससंकल्प प्रयास करते हैं। संस्कारों की परिधि में सम्यक प्रकार से किये गये कर्म ही हमारे संस्कृति की आधार शिला हैं और हमारा हरसम्भव यही प्रयास होना चाहिए कि हमारे कर्म सर्वथा विशुद्ध और सात्त्विक हों। हमारे कर्मों का उद्देश्य संस्कृति संरक्षण हो। ■

संस्कृति संवहन में मीडिया की भूमिका

डॉ. रामशंकर 'विद्यार्थी'
प्रधान संपादक, द एशियन थिंकर जर्नल
एवं सहायक आचार्य, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
आईआईएमटी कॉलेज ऑफ मैनेजमेंट

मीडिया और सांस्कृतिक अस्मिता में एक अन्योन्याश्रित संबंध है। मीडिया का उद्देश्य ही समाज और राष्ट्र के विभिन्न सांस्कृतिक घटकों के बीच संवाद स्थापित करना होता है। स्वाधीनता संघर्ष के दौर से ही भारतीय मीडिया का स्वरूप सांस्कृतिक और राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत रहा है। स्वाधीनता के बाद धीरे–धीरे इसमें विकृति आनी शुरू हो गई। मीडिया का व्यवसायीकरण बढ़ने लगा। देश के राजनीतिक और सामाजिक ढांचे में भी काफी बदलाव आने लगा। स्वाभाविक ही था कि मीडिया भी उससे अछूती नहीं रह सकती थी। धीरे–धीरे समाचारों के स्थान पर विचारों को प्रमुखता दी जाने लगी, फिर समाचारों में सनसनी हावी होने लगी।

देश आज संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। वैश्विक परिदृश्य ने एक ओर धन के रूप में डालर तथा भाषा में अंग्रेजी के महत्व को बढ़ा दिया है। भारतीय सांस्कृतिक शिक्षा को अनदेखा कर मानसिक परिपक्वता के अभाव में भारतीय अस्मिता एवं उसके घटको को स्थान न देकर, हम एक प्रवाह में पड़ गए। आंखें बंदकर चले ही जा रहे हैं। अच्छे–बुरे अथवा उपयुक्त और अनुपयुक्त का भेद करना भूल गए। शिक्षित समाज धीरे–धीरे भारतीय संस्कृति से और स्वयं अपनी आत्मा से बहुत दूर होता जा रहा है। अभी इनकी संख्या बहुत कम है। इनका झुकाव पाश्चात्य संस्कृति एवं जीवन दर्शन की ओर दिखाई पड़ता है। ये ही लोग देश के नीति–निर्माता भी बन बैठे हैं।

वर्तमान युग में मीडिया सांस्कृतिक संवहन का प्रयास कर रही है। ऐसे में जब पाश्चात्य संस्कृति दूसरी संस्कृतियों को निगल रही है। जैसे कि हम भारतीय पंचांग के अनुसार नए साल का उत्सव न मनाकर एक जनवरी को न्यू ईयर को सेलिब्रेट कर रहे हैं। वेलेंटाइन डे, फ्रेंडशिप डे, बर्थ डे को केक काटकर मनाने की प्रथा भारतीय परिवेश में पाश्चात्य से प्रवेश कर चुकी है। ऐसे में बहुत सारे जनमाध्यम सांस्कृतिक कार्यक्रमों, त्योहारों, पर्व, तिथियों संबंधित तथ्यों और दस्तावेजों को प्रकाशित कर समाज में संस्कृति को जीवंत करने की कोशिश में भागीदारी भी निभा रहे हैं। उदाहरण के तौर पर अमर उजाला, जागरण जैसे समाचार पत्र अपने पहले पेज पर तिथि भारतीय पंचाग के अनुसार प्रकाशित करते हैं। इस कोरोना काल में भी तीज–त्योहारों सहित नवरात्रि व दशहरा के कार्यक्रमों को बेहतर तरीके से प्रकाशित–प्रसारित करना भी संस्कृति को बढ़ावा देना ही है। समाज में सांस्कृतिक कार्यक्रम भी मीडिया कवरेज से ही अन्य लोगों को पता चलता है। राष्ट्रीय पर्व के कार्यक्रमों का प्रकाशन भी मीडिया की इसी भूमिका में आता है। अमर उजाला अखबार के लखनऊ संस्करण (07 अक्टूबर 2019 के अंक) में पेज आठ पर दहशरा और नवरात्रि के कार्यक्रमों पर कवरेज किया जाता है। यह समाज में सांस्कृतिक चेतना का प्रवाह करना ही है। इसी प्रकार दैनिक जागरण समाचार पत्र ने अपने सबरंग स्पेशल पेज के अंतर्गत मेरठ संस्करण (23 अगस्त 2019 के अंक) में कृष्ण जन्माष्टमी से संबंधित जानकारी दी है यह भी सांस्कृतिक चेतना के प्रसार का उदाहरण ही है।

आज भाषा, संस्कृति और तथ्यों की बजाय बाजार और आर्थिक समीकरणों पर जोर दिया जाने लगा लगा। ऐसे में यदि पत्रकारिता में सांस्कृतिक चेतना का ह्रास होने लगा तो यह कोई हैरानी का विषय नहीं है। देश के प्रमुख मीडिया संस्थान सांस्कृतिक समाचारों और विचारों को बाजारवादी चश्में से देखने लगे। कई मीडिया संस्थान तो भारतीय संस्कृति और परंपरा के विरोध में ही निरंतर उवाच करते रहते हैं। ऐसा नहीं है कि पाठक संस्कृति और परंपरा को देखना और समझना नहीं चाहता है बल्कि ये उसे पश्चिमी अवरस देकर ही परोसना चाहते हैं जिससे इनकी प्रसिद्धि हो सके। जो देखने में अच्छा लगे और ग्लैमरस हो और यह सब कुछ पाठकों को पसंद हो यही छापने की पद्धति पर ज़ोर दिया जाने लगा। धीरे–धीरे यही पाठको की पसंद बनती चली गयी। ऐसा भी एक समय था जब पाठकों के विरोध पर इंडिया टुडे को अश्लील चित्रों के प्रकाशन रोकना करना पड़ा था। आज पाठकों की वैसी चिंता शायद ही कोई मीडिया संस्थान करता हो। इस कोरोना काल में रामायण और महाभारत का पुनर्दृश्यांकन और जनमानस द्वारा उसे पसंद किया जाना मीडिया द्वारा संस्कृति संवहन का ही प्रयास है।

बहरहाल एक ओर हम जहां यह पाते हैं कि आज के मीडिया जगत में काफी गिरावट आई है और सांस्कृतिक संवर्धन से संबन्धित समाचारों और विचारों के प्रकाशन की गति धीमी हुई है वहीं जनमाध्यमों द्वारा सांस्कृतिक पक्ष जैसे यात्राएं, मेले, स्नान, कुंभ उत्सव, पूजा पद्धति आदि का वैश्विक विस्तार भी हुआ है। समाचार–पत्रों का तौर–तरीका, कार्यशैली और चलन सब कुछ परंपरागत मीडिया से बिल्कुल अलग और अनोखा दिखाई देने लगा है। कोरोना के इस दुर्भिच्छ काल में मीडिया की भूमिका को सकारात्मक देखा जा सकता है।

पारम्परिक मीडिया अपनी संस्कृति का सफलता पूर्वक संचार करती है। यही कारण है कि नवीन सकारात्मक सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रचार–प्रसार भी पारम्परिक मीडिया द्वारा ही किया जाता है। इससे यह स्पष्ट जाना जा सकता है कि संस्कृति के संवहन में मीडिया की महती भूमिका है। ■

भारतीय संस्कृति एवं आधुनिक शिक्षा

मोहित कुमार सिंह
छात्र, पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातक
आईआईएमटी कालेज ऑफ मैनेजमेंट, ग्रेटर नोएडा

विश्व में भारत देश को संस्कृति और परम्पराओं का प्रेरक कहा जाता है। पुरानी सभ्यताओं को आज भी शिष्टाचार में लिप्त किया जाता है। इसमें रहन–सहन एवं खान–पान की विधियाँ, व्यवहार प्रीतिमान, आचार–विचार, रीति–रिवाज, कला–कौशल, संगीत–नृत्य, भाषा–साहित्य, धर्म –दर्शन, आदर्श–विश्वास और मूल्य सब कुछ समाहित होते हैं। आधुनिक शिक्षा का संस्कृति और परम्पराओं पर गहरा प्रभाव पड़ा है। लेकिन भारतीय संस्कृति अभी भी कायम है। कोरोना महामारी के महासंकट काल में कई मसीहा बनकर लाखों लोगों की जिंदगी बचाने और उनके परिवार में भोजन पहुंचाने में आगे आए है। इससे साफ होता है कि संस्कृति अभी कायम है।

आधुनिक शिक्षा का असर पुरानी संस्कृति और परंपराओं पर काफी प्रभाव पड़ा है। स्वतंत्रता से पहले केवल 5–10 फीसदी शिक्षा का अनुसरण होता था। लेकिन आज की स्थिति में 90 फीसदी शिक्षा का विस्तार हुआ है। वहीं उन्नति की बात की जाए तो पहले से काफी गहरा असर हुआ है। डिजिटल माध्यम ने देश में समाज को आलसी बना दिया है। वर्तमान में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां आधुनिक शिक्षा पर पानी की तरह पैसा बहा रही है क्योंकि वे जानती है कि आधुनिक शिक्षा व्यक्ति को स्वार्थी बनाती है। यही नहीं आधुनिक शिक्षा का सबसे ज्यादा असर आत्मीयता और संस्कारों पर पड़ा है। आधुनिक शिक्षित व्यक्ति भारतीय संस्कृति और संस्कारों को पिछड़ेपन की निशानी मान निरंतर छोड़ता आ रहा है। इसी का परिणाम है कि देश में आज अपराध और व्यभिचार बढ़ रहा है, परिवार टूट रहे है, माता–पिता अपनी संतानों को पाल–पोस कर शिक्षित करती हैं तथा संतान उन्हें वृद्धाश्रम में छोड़ देते हैं। आधुनिक शिक्षा को छोड़ने का आवश्यकता नहीं है अपितु बदलाव कर संस्कार डालने की जरूरत है। शिक्षा प्रणाली ऐसी हो जिसमें आधुनिक विज्ञान का ज्ञान मिले साथ ही साथ बच्चों में संस्कारों का निर्माण हो, अपनत्व के भाव का विकास हो, ताकि अपराध, व्यभिचार, आर्थिक घोटालों पर अंकुश लगे। इन सभी मुद्दों पर आवाज़ उठाने के लिए आधुनिक शिक्षा के साथ संस्कार का होना बेहद जरूरी है। वर्तमान की नई शिक्षा प्रणाली उत्कृष्ट शिक्षा को बढ़ावा देने का प्रयास है।

प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता को देखते हुए शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग वाले बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है। साथ ही निजीकरण को भी सरकारों ने बढ़ावा दिया है, ताकि बढ़ती जनसंख्या को समुचित शिक्षा प्रदान की जा सके। गैरसरकारी संस्थानों में सरकारी मान्यताएं दी गई। बदलते शिक्षण संस्थानों में संस्कृति लुप्त होती जा रही है। बोलचाल में स्वार्थ की भावनाएं प्रवाहित होती जा रही है। अपराध की गंभीरता देखने को हर दिन बड़ी संख्या में मिल जाती हैं। निजीकरण में शिक्षा का स्तर अब सरकारी संस्थानों से कई गुणा अच्छा है। इस समय शिक्षा द्वारा उत्पादकता बढ़ाने सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकीकरण करने, भारत का आधुनिकरण करने तथा नैतिक सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करने के लिए आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है। नई शिक्षा नीति में समांतर शिक्षा का प्रमुख रूप दिया गया। नई शिक्षा नीति में बुनियादी स्तर पर ठोस उपाय किए गए हैं। उसके तहत प्रत्येक गाँव में अनिवार्य रूप से विद्यालय खोलने का प्रस्ताव रखा गया है। इसमें पिछड़े वर्ग के लोगों को विशेष सुविधा दी गई है तथा साथ ही साथ प्रौढ़ शिक्षा पर भी विशेष बल दिया गया है। प्रौढ़ों को शिक्षित करने के उद्देश्य से देश भर में विभिन्न स्थानों पर अनौपचारिक शिक्षा के तहत आँगनबाडी केंद्र खोले गए हैं।

इस शिक्षा नीति को जीवन के अनुरूप प्रायोगिक बनाया गया है। इसमें शिक्षा के विकास हेतु विभिन्न संसाधनों–सरकारी, अर्द्धसरकारी तथा निजी सहायता स्रोतों की उपलब्धि को सुलभ बनाया गया है, साथ ही आधुनिक संसाधनों जैसे आकाशवाणी, दूरदर्शन व कंप्यूटर आदि के प्रयोग पर विशेष बल दिया गया है। इन संसाधनों के प्रयोग को और भी अधिक व्यापक बनाने हेतु प्रयास जारी हैं। इस प्रस्ताव में प्रत्येक जिले में एक केंद्रीय विद्यालय खोलने का प्रावधान भी शामिल हैं। आवासीय नवोदय विद्यालय का प्रावधान हर जिले में लागू होगा। भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली ब्रिटिश प्रतिरूप पर आधारित है जिसे सन 1835 ई० में लागू किया गया। जिस तीव्र गति से भारत के सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक परिदृश्य में बदलाव आ रहा है उसे देखते हुए यह आवश्यक है कि हम देश की शिक्षा प्रणाली की पृष्ठभूमि, उद्देश्य, चुनौतियों तथा संकट पर गहन अवलोकन करने की आवश्यकता है। विगत दो सौ वर्षों का विश्लेषण किया जाए तो अनुभव में प्राप्त यही होगा कि शिक्षा के क्षेत्र से मानव समाज वंचित रहा है।

आज अंग्रेजों द्वारा थोपी गई उसी मैकाले शिक्षा पद्धति से हमारे देश की 90 प्रतिशत जनसँख्या शिक्षित है। लेकिन उसके बावजूद क्या हमारा समाज आज भी उतना उन्नत है जब हम अशिक्षा के अंधकार में डूबे हुए थे? जबाब मिलेगा नहीं। क्योंकि जब हम अशिक्षा के अंधकार में डूबे हुए थे तब हमारा समाज आज से ज्यादा उन्नत था। इस तरह से हम कह सकते है कि कभी हम अशिक्षा के अंधकार में डूबे थे, आज शिक्षा के अंधकार से अन्धकार में डूबे है। क्योंकि आज की आधुनिक तथाकथित शिक्षा व्यक्ति को स्वार्थी बनाती है। आज का पढ़ा लिखा इंसान सिर्फ अपने बीबी बच्चों तक सीमित रह गया है। यही कारण है शिक्षा की पूर्णता व्यवस्था होने के बावजूद संस्कार में गहरा असर पड़ा है। ■

हमारे तीर्थ- हमारी धरोहर

मोनिका चौहान
शिक्षिका

हमारे लिए ये बड़े सौभाग्य की बात है कि हमारे देवी देवताओं की प्राचीन मुर्तियां हमारी आस्था के प्रतीक के साथ–साथ हमारी अमूल्य विरासत भी है। भारतीयों के लिए विरासत का मतलब है हमारे देश की अमूल्य धरोहर। हमारे लिए हमारी धरोहर का मतलब है हमारी संस्कृति, हमारी आस्था, हमारे तीर्थस्थान। ऐतिहासिक, पुरातात्विक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक अन्य धरोहरें हमारी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति व गौरवशाली इतिहास की पहचान है। हमारे तीर्थ स्थानों को अनमोल विरासत के रूप में सहेजना व संवारना हम सब की जिम्मेदारी है। अध्यात्म और साधना का केन्द्र भारत तीर्थों से भरा हुआ है।

चार धाम के रूप में बद्रीनाथ, द्वारिका, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम् और ज्योर्तिलिंग के रूप में 12 ज्योर्तिलिंग, शंकराचार्य द्वारा स्थापित मठ व अलग–अलग प्रदेशों में मंदिर व तीर्थ स्थानों को हमारे ऋषि मुनियों द्वारा स्थापित किया गया है। अलग–अलग स्थानों पर लगने वाले कुम्भ स्नान व मेले हमारी सभ्यता को हमारी संस्कृति से जोड़ते हैं। जिसमें भारतीय समाज रस बस कर हिन्दू धर्म की मौलिकता को उच्च भाव में स्थापित करता है।

बद्रीनाथ :– बद्रीनाथ उत्तराखण्ड के चमोली जिले में पड़ने वाला प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। भारत के चारधामों में बद्रीनाथ सुप्रसिद्ध है। बद्रीनाथ धाम ऐसा

धार्मिक स्थल है जहां नर व नारायण दोनों मिलते हैं। बद्रीनाथ में भगवान विष्णु की पूजा होती है इसलिए इसे विष्णुधाम भी कहा जाता है। बद्रीनाथ मंदिर में चार भुजाओं वाली काले पत्थर की बहुत छोटी मूर्तियां है। जहां भगवान विष्णु पद्मासन की मुद्रा में विराजमान हैं। बद्रीनाथ से सम्बंधित मान्यताओं के अनुसार इस धाम की स्थापना सतयुग में हुई थी।

द्वारिका धाम : – द्वारिका धाम चार धामों में

से एक माना जाता है। द्वारका का नाम द्वार से लिया जाता है। इसे मोक्ष के प्रवेश द्वार के रूप में माना जाता है। द्वारकाधीश नाम का अर्थ है, द्वारका के राजा यानी भगवान श्री कृष्ण। मुख्य मंदिर 5 मंजिला 72 स्तम्भों के द्वारा स्थापित है। मूल मंदिर श्री कृष्ण के पोते वज्रभ ने गोमती नदी के किनारे भगवान कृष्ण की आवासीय जगह पर बनाया गया था। मंदिर के शिखर पर 52 यार्ड के ध्वज का दिन में 5 बार उतरने और चढ़ने का विधान है। चालुक्य शैली में बना ये मंदिर 16 वीं सदी में बनाया गया।

जगन्नाथपुरी :– जगन्नाथपुरी मंदिर

भगवान जगन्नाथ (श्रीकृष्ण) को समर्पित है। यह उड़ीसा के पुरी शहर में स्थित है। जगन्नाथ शब्द का अर्थ जगत का स्वामी होता है। इस मंदिर को हिन्दुओं के चारधाम में से एक गिना जाता है। मंदिर में भगवान जगन्नाथ, उनके बड़े भाई बलभद्र और बहन सुभद्रा की कांठ की मूर्तिया हैं। लकड़ी की मूर्तियों वाला ये देश का अनोखा मंदिर है। मंदिर से जुड़ी एक मान्यता है कि जब भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी देह का त्याग किया और उनका अंतिम संस्कार किया गया तब कृष्ण का हृदय एक जिंदा इंसान की तरह धड़कता रहा। कहते है कि वो आज भी सुरक्षित है और भगवान जगन्नाथ की लकड़ी की मूर्ति के अंदर है।

रामेश्वरम् :– रामेश्वरम भी हिन्दुओं के चारधामों में से एक है यह तमिलनाडु के रामनाथपुरम जिले में उपस्थित है। इसके अलावा यहां उपस्थित शिवलिंग बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक माना जाता है। कथाओं के अनुसार जब श्रीराम ने लंका के राजा रावण का वध कर सीता जी को मुक्त किया तो गंधमादन पर्वत पर स्थित ऋषियों ने श्रीराम पर ब्राहमण (रावण) के बध का

आरोप लगाने लगे। उनकी सलाह के अनुसार इस पाप को धोने के लिए श्रीराम ने यहां पर शिव की पूजा करने का निर्णय लिया था। शिव की पूजा के लिए श्रीराम ने हनुमान जी से कैलाश पर्वत से शिवलिंग लाने को कहा लेकिन हनुमान जी को देर होने के कारण सीता जी ने रेत का शिवलिंग बना दिया और रामजी ने उसकी आराधना की। हनुमान जी जब शिवलिंग लेकर पहुंचे तो रेत के शिवलिंग की जगह हनुमान जी का लाया हुआ शिवलिंग रखने की हनुमान जी ने बहुत कोशिश की लेकिन वह उसे हिला न सके। तब श्रीराम ने ये विधि स्थापित की कि पहले रेत के शिवलिंग की पूजा होगी बाद में कैलाश पर्वत से लाये शिवलिंग की।

द्वादश ज्योतिर्लिंग :– हिन्दू धर्म में हमारी धरोहर के रूप में भगवान शिव के 12 ज्योतिर्लिंग स्थापित है। कहा जाता है

शिवजी जहां–जहां प्रगट हुए उन बारह स्थानों पर स्थित शिवलिगों को ज्योतिर्लिंगों के रूप में पूजा जाता है। हिन्दू मान्यता के अनुसार जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातः काल और संध्या के समय इन बारह ज्योतिर्लिंगों का नाम लेता है, उसके सात जन्मों का किया हुआ पाप मिट जाता है।

1.सोमनाथ गुजरात में, 2. मल्लिकार्जुन आन्ध्र प्रदेश में, 3. महाकालेश्वर मध्यप्रदेश में, 4.ऊँकारेश्वर मध्यप्रदेश में, 5.केदारनाथ उत्तराखण्ड में, 6. भीमाशंकर महाराष्ट्र में, 7. काशी विश्वनाथ वाराणसी में, 8. त्र्यम्बकेश्वर महाराष्ट्र में, 9. वैद्यनाथ झारखण्ड में, 10. नागेश्वर गुजरात में, 11. रामेश्वर तमिलनाडु में, 12. घृष्वेश्वर महाराष्ट्र में स्थित है।

शंकराचार्या के चार मठ :- शंकराचार्य भारत के एक महान दार्शनिक एवं धर्मप्रवर्तक थे। भगवत्गीता, उपनिषदों, और वेदांतसूत्रों पर लिखी हुई इनकी टीकाएं बहुत प्रसिद्ध है। इन्होंने भारत वर्ष में चार मठों की स्थापना की थी जो बहुत प्रसिद्ध व पवित्र माने जाते है वे चारों ज्योतिष्पीठ बदीरकाश्रम, श्रृंगेरी पीठ, द्वारिका शारदापीठ, पुरी गोवर्धन पीठ है। चार मठों से ही गुरु–शिष्य परम्परा का निर्वाह होता है। ये गुरु प्रायः धर्म गुरु होते है इनकी दी गई शिक्षा मुख्यतः आध्यात्मिक होती है पर ऐसा हमेशा नहीं होता। श्रृंगरी मठ भारत के दक्षिण में, गोवर्धन मठ भारत के पूर्वी भाग ओडिशा राज्य के जगन्नाथ पुर, में शारदामठ गुजरात के द्वारकाधाम में व ज्योर्तिमठ उत्तराखण्ड के बद्रीनाथ में स्थित है।

गया :- गया शहर की महत्ता इसी बात से है कि शास्त्रों में इसे गया तीर्थ का दर्जा दिया गया। माना जाता है कि स्वयं विष्णु यहां पितृ देवता के रूप में मौजूद है, इसलिए इसे 'पितृ तीर्थ' भी कहा जाता है। गया क्षेत्र में भगवान विष्णु पितृदेवता के रूप में विराजमान रहते है। भगवान विष्णु मुक्ति देने के लिए 'गदाधर' के रूप में 'गया' में स्थित है। गयासुर के विशुद्ध देह में ब्रह्मा, जनार्द्धन, शिव तथा प्रपितामह स्थित है। अतः पिंडदान के लिए गया सबसे उत्तम स्थान है। कहा जाता है कि गयासुर नामक असुर ने कठिन तपस्या कर ब्रह्मा जी से वरदान मांगा था कि उनका शरीर पवित्र हो जाये जिसके देखने मात्र से लोगों के पापों का अन्त हो जाये। इस वरदान के चलते लोग पाप करने लगे और गयासुर के दर्शन करके फिर से पापमुक्त हो जाते थे। इससे बचने के लिए यज्ञ के लिए देवताओं ने गयासुर से पवित्र स्थान की मांग की। गयासुर ने अपना शरीर देवताओं को यज्ञ के लिए दे दिया। जब गयासुर लेटा तो उसका शरीर पांच कोस में फैल गया। यहीं पांच कोस आगे चलकर गया बना।

कुम्भ पर्व :- कुम्भ पर्व हिन्दू पंथ का एक

महत्वूपर्ण पर्व है। भारतवर्ष में कुम्भ मेला अलग–अलग स्थानों पर प्रति बारहवें वर्ष में लगता है। कुम्भ मेला प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक में होता है। लेकिन प्रयाग में दो कुम्भ पर्वों के बीच छह वर्ष के अन्तराल में अर्धकुम्भ भी होता है। सभी श्रद्धालु एक स्थान पर एकजुट होकर इस सामूहिक उत्सव में भाग लेते है। यह मेला मकर संक्रान्ति के दिन प्रारम्भ होता है। तब सूर्य और चन्द्रमा, वृश्चिक राशि में और वृहस्पति मेष राशि में प्रवेश करता है तो 'स्नान–योग' बनता है। इस योग को कुम्भ कहते है। इस दिन स्नान करने से आत्मा को उच्चलोक की प्राप्ति सहजता से हो जाती है। कुम्भ में स्नान करना साक्षात स्वर्ग दर्शन माना जाता है। हमारे हिन्दू धर्म में इसका विशेष महत्व है। कुम्भ मेला प्रत्येक तीन वर्षों के बाद नासिक, प्रयाग, उज्जैन और हरिद्वार में बारी–बारी से मनाया जाता है। प्रयाग के संगम तट पर होना वाला आयोजन सबसे भव्य व पवित्र माना जाता है। धार्मिक मान्यता यह है कि जब राक्षसों व देवताओं में अमृत के लिए लड़ाई हो रही थी तब भगवान विष्णु ने 'मोहिनी' का रूप लिया और राक्षसों से अमृते ले लिया। भगवान विष्णु ने गरुड़ को अमृत पारित कर दिया और अंत में राक्षसों और गरुड़ के बीच संघर्ष में कीमती अमृत की कुछ बूंदे इलाहाबाद, नासिक, हरिद्वार और उज्जैन में गिर गयी। तब से इन स्थानों पर प्रत्येग 12 वर्षों में कुम्भ मेला आयोजित होता है।

नौ देवी :- उत्तर भारत में 9 देवियों का विशेष महात्म्य है। हिमाचल प्रदेश में समानांतर फैले ये आदिशक्ति के दिव्य सिद्धपीठ और शक्तिपीठ मंदिर है। नौ देवियों की यात्रा में एक जम्मू कश्मीर, पांच हिमाचल प्रदेश, दो हरियाणा और एक उत्तर प्रदेश का शक्तिपीठ शामिल है। 9 देवियां मां दुर्गा की नौ अभिव्यक्यिां है। भारत के विभिन्न हिस्सों में नवरात्र उत्सव मनाया जाता है। जिसमें मां दुर्गा के अलग–अलग नौ रूपों की उपासना की जाती है। यह उत्सव बहुत ही भव्य तरीके से भारतवर्ष में मनाया जाता है। वैष्णो देवी, चितपूर्णा देवी, कालिका देवी, चामुण्डा देवी, कांगड़ा देवी, ज्वाला देवी, नैना देवी, मनसा देवी और शाकुम्भरी देवी अलग–अलग स्थानों पर विराजमान है।

अयोध्या मंदिर :- अयोध्या सरयू नदी के

तट पर उत्तर प्रदेश में बसी एक धार्मिक एवं ऐतिहासिक नगरी है। अयोध्या का पुराना नाम साकेत है और यह भगवान श्रीराम की पावन जन्म स्थली के रूप में हिन्दू धर्मावलम्बियों के आस्था का केन्द्र है। अयोध्या प्राचीन समय में कौशल राज्य की राजधानी एवं प्रसिद्ध महाकाव्य रामायण की पृष्ठभूमि का केन्द्र थी। प्रभु राम की जन्मस्थली होने के कारण अयोध्या को मोक्षदायिनी एवं हिन्दुओं की प्रमुख तीर्थस्थली के रूप में माना जाता है। ■

भारतीय संस्कृति के संरक्षक राष्ट्रीय नायक

रिमझिम निगम
(छात्रा एमबीए, ग्राफिक एरा डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी, देहरादून)

भारत एक लोकतांत्रिक देश है जिसकी संस्कृति की संपूर्ण विश्व में अलग पहचान है। संस्कृति लोगों की सोच और उनकी जीवन पद्धति से संबंधित है, जिसका सरोकार उनकी अंतर्रात्मा और कार्य पद्धति से है। कई बार सभ्यता और संस्कृति को एक ही समझ लिया जाता है, हालांकि दोनों के बीच में अत्यंत सूक्ष्म अंतर है। संस्कृति अगर व्यक्ति की सोच है तो सभ्यता व्यक्ति के आचरण और व्यवहार से संबंधित है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सभ्यता और संस्कृति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भारत में सांस्कृतिक विविधता होने के बावजूद हमारी संस्कृति अक्षुण्य रही है। अगर हम इतिहास के पन्नों को पलटें तो पता चलता है कि भारतीय संस्कृति को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान भारत के अनेक महा नायकों एवं नायिकाओं का रहा है। यूं तो विभिन्न कालखंडों में अनगिनत नायकों एवं महानायकों ने भारतीय संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन का कार्य किया है, पर मैं इस लेख में कुछ चुनिंदा महानायकों एवं नायिकाओं का उल्लेख करना चाहूंगी।

भारतीय संस्कृति सामाजिक मानदंडों, रीति–रिवाजों, परंपराओं, राजनीतिक, नैतिक, प्रौद्योगिकी और कलाकृतियों का मिश्रण है। भारत के विभिन्न राज्यों में भाषाओं, धर्मों, नृत्य, संगीत, कविता, साहित्य, फैशन, मीडिया, वास्तुकला, भोजन और रीति–रिवाजों की विविधता देखने को मिलती है। पहाड़ों, रेगिस्तानों, घाटियों, मैदानों, पठारों और तटों के संयोजन के साथ–साथ हमें सभी मौसमों की सुंदरता का अनुभव होता है।

268 से 232 ईसा पूर्व अशोक मौर्य वंश के प्राचीन भारत के सबसे वैभवशाली सम्राट थे, उन्होंने प्राचीन एशिया में बौद्ध धर्म के प्रसार को बढ़ावा दिया और जानवरों की हत्या पर प्रतिबंध लगाया, उन्होंने लोगों का आह्वान किया कि वे शाकाहारी बनें। सम्राट अशोक द्वारा तैयार किए गए अभिलेखों से गहरी आध्यात्मिकता का पता चलता है। उनमें दया, आत्म–परीक्षा, सत्यता, कृतज्ञता, हृदय की पवित्रता, उत्साह, प्रबल निष्ठा और आत्म–संयम आदि गुण शामिल थे।

पांचवीं शताब्दी में खगोलशास्त्री और गणितज्ञ आर्यभट्ट ने गणित एवं खगोल विज्ञान में अभूतपूर्व सिद्धांत प्रतिपादित किए जिस पर आज भी भारतीयों को गर्व है। उनकी प्रसिद्ध खोजें पाई, बीजगणितीय पहचान, त्रिकोणमितीय कार्य आदि प्रमुख हैं। गणित के क्षेत्र में कई युवा उनसे प्रेरित थे और उनका अप्रतिम योगदान आज भारतीय इतिहास के पन्नों पर दर्ज है।

भारत में नौवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक शासन करने वाले चोल राजवंश ने न केवल तमिल और संस्कृत भाषा का संरक्षित किया बल्कि तमिल साहित्य का संवर्धन भी किया। चोल वंश के राजाओं ने मंदिरों और भवनों के निर्माण में विशेष वास्तुकला का विकास किया जिसका वैभव आज भी विद्यमान है।

सोलहवीं शताब्दी में संगीत के सम्राट कहे जाने वाले तानसेन ने संगीत के क्षेत्र में अभूतपूर्व नवाचार कर न केवल संगीत परंपरा को समृद्ध किया बल्कि इससे भारतीय संस्कृति का संरक्षण और संवर्धन करने में महती भूमिका निभाई। उन्होंने ग्वालियर के हिंदू राजा रामचंद के संरक्षण में अपने जीवन के साठ वर्षों तक संगीत की विधा अध्ययन किया। उन्होंने मुगल शासक अकबर के दरबार की शान में भी चार चांद लगा दिए।

''मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहिं जपत पुरारी।।'' ये पंक्तियां सोलहवीं शताब्दी में महाकवि तुलसीदास जी द्वारा रचित महाकाव्य 'रामचरित्रमानस' की हैं। महाकवि ने एक ऐसे कालजयी महाकाव्य की रचना की है, जो आज भी सामयिक और प्रासंगिक है। कला, संस्कृति और समाज में उनके कार्यों की दुनिया भर में प्रशंसा की गई है।

19 वीं शताब्दी में राजा राम मोहन राय को बंगाल पुनर्जागरण का जनक माना जाता है। उन्होंने भारतीय समाज से सती और बाल विवाह की प्रथा जैसी कुप्रथाओं को समाप्त करने के लिए गंभीर प्रयास किए। भारत की आजादी में अहम योगदान देने वाले भगत सिंह अपनी कम उम्र के बावजूद, राष्ट्रवाद और स्वतंत्रता में विश्वास करते थे और देश के लिए शहीद हो गए। वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई के बारे में हम सभी जानते हैं। उनकी शौर्य गाथाएं काफी प्रचलित हैं। वह झांसी की रानी थीं, जिन्होंने वर्ष 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजी हुकुमत के खिलाफ खूब लड़ाई लड़ी थीं।

ब्रिटिश कमांडर ह्यूग रोज ने उनके बारे में टिप्पणी की थी कि वह सभी भारतीय नेताओं में सबसे खतरनाक थी।

जब महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा एक दिवा स्वप्न होता था 1865 में जन्मी आनंदीबाई जोशी ने उस समय पाश्चात्य चिकित्सा में चिकित्सक की डिग्री हासिल कर ली थी। वह उस समय दक्षिण एशिया की एकमात्र महिला चिकित्सक बन गई थीं। वह महिला सशक्तीकरण का एक न केवल जीवंत उदाहरण बन गईं बल्कि

आनंदीबाई ने उन भारतीय महिलाओं के लिए द्वार खोल दिए जो गृहिणियों के आवरण से निकलकर समाज में कुछ अलग कार्य करना चाहती थीं।

स्वामी विवेकानंद ने अपनी महज 39 साल की आयु में भारतीय अध्यात्म और संस्कृति का परचम लगभग संपूर्ण विश्व में फैला दिया। उन्होंने वर्ष 1893 में शिकागो में आयोजित विश्व धर्मों की संसद में भारत का प्रतिनिधित्व किया था। उन्होंने वेदांत और योग के दर्शन से पश्चिमी दुनिया को परिचित कराया। उन्होंने समाज की भलाई के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। स्वामी जी का कहना था, 'आपको अंदर से बाहर निकलना होगा। कोई आपको सिखा नहीं सकता, कोई आपको आध्यात्मिक नहीं बना सकता। तुम्हारी आत्मा के सिवा कोई दूसरा गुरु नहीं है।'

भारतीय साहित्य को नई दिशा प्रदान करने वाले साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद भारतीय संस्कृति के चमकते सितारे हैं। उनके बचपन का नाम धनपत राय श्रीवास्तव था। अंग्रेज शासकों द्वारा उनके लेखन पर प्रतिबंध लगाने के बाद उनको अपना नाम बदलकर मुंशी प्रेमचंद करना पड़ा था। वह 20वीं सदी की शुरुआत के सबसे महान हिंदुस्तानी लेखकों में से एक हैं। वह सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानीकार और नाटककार हैं। उनके लेखन में दहेज प्रथा और विधवा पुनर्विवाह जैसे महिला केंद्रित मुद्दे प्रमुखता से शामिल हैं। साथ ही वह एक सच्चे देशभक्त थे क्योंकि उन्होंने महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन का हिस्सा बनने के लिए अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी थी, भले ही वे अपने परिवार में एकमात्र कमाने वाले थे। मुंशी प्रेमचंद के व्यक्तित्व और कृतित्व को समझने के लिए उनके ही ये पंक्तियां पर्याप्त हैं–

"जब तक धन और संपत्ति की बेड़ियां हमें बांधती हैं, हम हमेशा के लिए शापित रहेंगे और कभी भी मानवता की वेदी को प्राप्त नहीं कर पाएंगे, जो कि जीवन का अंतिम लक्ष्य है।"

भारत कोकिला के नाम से मशहूर कवियित्री सरोजिनी नायडू ने 19 वीं शताब्दी में जो कार्य किया, वह आज भी स्मरणीय है। वह न केवल कवियित्री बल्कि एक कुशल राजनीतिक कार्यकर्ता थीं। वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष बनने वाली पहली महिता और वर्ष 1947 में संयुक्त प्रांत की राज्यपाल नियुक्त होने वाली पहली भारतीय महिला थीं। उनकी देशभक्ति, रोमांस और त्रासदी सहित अधिक गंभीर विषयों पर लिखी कविताएँ लोगों को आज भी प्रेरणा देती हैं। इसके अलावा हमारी ज्ञान परंपरा, विज्ञान, दर्शन, धर्म एवं अध्यात्म के लिए समर्पित नायकों की बात करें तो उनकी भी एक लंबी सूची है।

वास्तविकता तो यह है कि भारतीय संस्कृति के ऐसे अनगिनत नाम हैं जो भारतीय संस्कृति के संवाहक एवं संरक्षक हैं। निस्संदेह, सनातन काल से अब तक विभिन्न कालखंडों में अनेक नायकों ने अपरमित और असीमित योगदान दिया है। ऐसे सभी नायकों की चर्चा करना यहां संभव नहीं है। अंततः मैं भारतीय संस्कृति के उन सभी नायकों और महानायकों को कोटि कोटि नमन करती हूं जिन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन का महत्वपूर्ण कार्य किया। ■

आधुनिकता के कारण विलुप्त होता पारंपरिक भारतीय समाज

अजीत कुमार पांडेय
शोध छात्र, दिल्ली विश्वविद्यालय

'आधुनिकता' और 'पारंपरिक भारतीय समाज' यह अपने आप में दो विषय हैं और मौजूदा परिपेक्ष्य में इन दोनों का भौगोलिक केंद्र भी भिन्न है जिसपर यह लेख प्रकाश डालेगा। एक की परिकल्पना पश्चिम पर आधारित है दूसरे की पूरब पर।

भारत की ज्यादातर आबादी गाँवों में बसती है, पूरे भारत की आबादी पर गांवो का प्रत्यक्ष या फिर अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव है। हम कह सकते हैं कि भारत कितना भी शहरी प्रभाव में आ जाये एक बहुत बड़ी आबादी का मन गाँवो में ही रचता और बसता है।

यह लेख भी पहले आपको गाँव की ही तरफ लेकर जाएगा फिर भागते हुए शहरों में।

गाँव का उल्लेख करते ही सर्वप्रथम जो दृश्य हम महसूस करते हैं उसमें – खेत, खलिहान , पशु, बगीचा, नहर, तालाब और संयुक्त परिवार ही आता है। गाँव का वातावरण सुकून देने वाला होता है, पर क्या मौजूदा दौर में भी हमारे गाँव उतने समृद्ध और समरस हैं?

या आधुनिकता का बुरा प्रभाव इनपर भी पड़ा है?

एक दौर था जब ज्यादातर संयुक्त परिवारों में समरसता और आपसी सामंजस्य था। ऐसे परिवार एक संस्था के रूप में कार्य करते हैं, जिनके माध्यम से सामाजिकता, संस्कार, समरसता, दायित्वबोध, सेवाभाव आदि जैसे मूल्य हम स्वतः ही सीख सकते हैं। इन परिवारों में ज्यादा संख्या में लोग रहते थे। भोजन, भंडारों के समान पकाए जाते थे भोजन पकाने के दौरान सभी सदस्यों का अपना योगदान होता था। कोई लकड़िया या उपले लेकर आता कोई खेत से सब्जियाँ। भोजन बनने के दौरान भी सब एक दूसरे का सहयोग करते। भोजन भी नियम से होता। इन सब कार्यों के दौरान अनुशासन और आपसी सामंजस्य सीखने योग्य होते। लगभग सभी घरों में पशुपालन भी होता था और पशुओं के प्रति सारे सदस्यों का गहरा लगाव होता था। खेत – खलिहानों में भी नियमित रूप से कार्य हुआ करते, घर के छोटे बच्चे खेतो तक भोजन पहुँचाते। इन सभी बातो का जिक्र करना इसलिए ज़रूरी है क्योंकि इस प्रक्रिया में कदम कदम पर शिक्षा और जिम्मेदारियों का ऐहसास होता है। लोगों के प्रति समभाव, छोटों के प्रति जिम्मेदारी – बड़ों के प्रति सम्मान, रिश्तों के प्रति संवेदनशीलता, प्रकृति के प्रति प्रेम, जानवरों के प्रति संवेदना, समाज के प्रति दायित्वबोध और राष्ट्र के प्रति कर्तव्यनिष्ठा, यह जागृत करने की शक्ति हमारे पारम्परिक भारतीय समाज में हमेशा से रही है।

बाल्यावस्था से ही बच्चों में समझ विकसित होने लगती है। सही और गलत का भान इस बात पर निर्भर है कि उनका वातावरण कैसा है। प्रश्न यह है इन विषयों पर ध्यान देना इतना आवश्यक क्यों है?

भारतीय परिपेक्ष्य में आधुनिकता के मायनों को समझना आवश्यक है। परंतु मौजूद दौर में पश्चिम के विचार समाज पर ज्यादा हावी हैं। जिन मूल्यों को हमारा समृद्धिशाली समाज स्वतः ही सिखा देता है उसके लिए आज के दौर में संस्थान बनाने पड़ रहे हैं, विषयों के रूप में हमें पढ़ाया जाने लगा। परंतु जिन मूल्यों का हमें व्यवहारिक ज्ञान चाहिए था उनकों सुसज्जित और अलंकृत परिभाषाओं में कैद कर दिया गया और कहा गया कि इसे याद कर लिजिये जब प्रश्न पूछा जाए तो लिख दीजिएगा। गाँवों को देखने और समझने के लिए 'विलेज टूरिज्म' शुरू हो चुके हैं। हमें हमारे संस्कृति और समाज का ज्ञान विदेशी पुस्तकों के माध्यम से दिया जाने लगा है। समझ में आ गया होगा कि भारतीय और पश्चिमी परिपेक्ष्य के मौलिक चिंतन में कितना अंतर होता है।

हमें जल्द से जल्द इस विचार रूपी विदेशी ऐनक को निकाल देने चाहिए अन्यथा इसका नंबर जितना ज्यादा बढ़ेगा हमें हमारे मूल्य भी उतने ही धुँधले दिखाई देंगे।

एक अनुशासित राष्ट्र के लिए इन सभी गुणों का होना अत्यंत ही आवश्यक है। जिस नैतिक शास्त्र को हम आधुनिक काल के शिक्षण संस्थानों में एक विषय के रूप में पढ़ते हैं, यह हमारे समाज की मूल संरचना में पहले से ही विद्यमान है। एकल परिवार में कई बार ऐसा भी होता है जब अभिभावक व्यस्तता के कारण अपने बच्चों पर ध्यान नहीं दे पाते जिसके कारण उनमें समय के साथ परिपक्वता नहीं आ पाती एकल परिवारों में कोई दोष नही है परंतु बदलते परिवेश में हम इसे कितना बेहतर बना सकते है, इसपर हमें तेजी से कार्य करना होगा।

यहाँ विषय के जड़ में बच्चों और परिवारों को रखा गया है, क्योंकि यह एक समृद्धिशाली समाज की मूल ईकाई हैं। समाज का निर्माण भी इन्हीं से होता। अगर इनकी जड़ो को सर्वोत्तम मानवीय मूल्यों की खाद से सींचा जाए, तो यह बेहद विशाल और छायादार वृक्ष के समान बनेंगे और इससे समाज बेहद मजबूत होगा, तब जाकर यह समरस समाज की परिकल्पना पर आधारित होगा। ■

रामकृष्ण परमहंस की महासमाधि

महावीर सिंघल
वरिष्ठ लेखक

श्री रामकृष्ण परमहंस का जन्म फागुन शुक्ल 2, विक्रमी सम्वत् 1893 (18 फरवरी, 1836) को कोलकाता के समीप ग्राम कामारपुकुर में हुआ था। पिता श्री खुदीराम चट्टोपाध्याय एवं माता श्रीमती चन्द्रादेवी ने अपने पुत्र का नाम गदाधर रखा था। सब उन्हें स्नेहवश 'गदाई' भी कहते थे।

बचपन से ही उन्हें साधु–सन्तों का साथ तथा धर्मग्रन्थों का अध्ययन अच्छा लगता था। वे पाठशाला जाते थे; पर मन वहाँ नहीं लगता था। इसी कारण छोटी अवस्था में ही उन्हें रामायण, महाभारत आदि पौराणिक कथाएँ याद हो गयीं थीं। बड़े होने के साथ ही प्रकृति के प्रति इनका अनुराग बहुत बढ़ने लगा। प्रायः ये प्राकृतिक दृश्यों को देखकर भावसमाधि में डूब जाते थे। एक बार वे मुरमुरे खाते हुए जा रहे थे कि आकाश में काले बादलों के बीच उड़ते श्वेत बगुलों को देखकर इनकी समाधि लग गयी। ये वहीं निश्तेज होकर गिर पड़े। काफी प्रयास के बाद इनकी समाधि टूटी।

पिता के देहान्त के बाद बड़े भाई रामकुमार इन्हें कोलकाता ले आये और हुगली नदी के तट पर स्थित रानी रासमणि द्वारा निर्मित माँ काली के मन्दिर में पुजारी नियुक्ति करा दिया। मन्दिर में आकर उनकी दशा और विचित्र हो गयी। प्रायः वे घण्टों काली माँ की मूर्त्ति के आगे बैठकर रोते रहते थे। एक बार तो वे माँ के दर्शन के लिए इतने उत्तेजित हो गये कि कटार के प्रहार से अपना जीवन ही समाप्त करने लगे; पर तभी माँ काली ने उन्हें दर्शन दिये। मन्दिर में वे कोई भेदभाव नहीं चलने देते थे; पर वहाँ भी सांसारिक बातों में डूबे रहने वालों से वे नाराज हो जाते थे।

एक बार तो मन्दिर की निर्मात्री रानी रासमणि को ही उन्होंने चाँटा मार दिया। क्योंकि वह माँ की मूर्त्ति के आगे बैठकर भी अपनी रियासत के बारे में ही सोच रही थी। यह देखकर कुछ लोगों ने रानी को इनके विरुद्ध भड़काया; पर रानी इनकी मनस्थिति समझती थी, अतः वह शान्त रहीं।

इनके भाई ने सोचा कि विवाह से इनकी दशा सुधर जाएगी; पर कोई इन्हें अपनी कन्या देने को तैयार नहीं होता था। अन्ततः इन्होंने अपने भाई को रामचन्द्र मुखोपाध्याय की पुत्री सारदा के बारे में बताया। उससे ही इनका विवाह हुआ; पर इन्होंने अपनी पत्नी को सदैव माँ के रूप में ही प्रतिष्ठित रखा।

मन्दिर में आने वाले भक्त माँ सारदा के प्रति भी अतीव श्रद्धा रखते थे। धन से ये बहुत दूर रहते थे। एक बार किसी ने परीक्षा लेने के लिए दरी के नीचे कुछ पैसे रख दिये; पर लेटते ही ये चिल्ला पड़े। मन्दिर के पास गाय चरा रहे ग्वाले ने एक बार गाय को छड़ी मार दी। उसके चिन्ह रामकृष्ण की पीठ पर भी उभर आये। यह एकात्मभाव देखकर लोग इन्हें परमहंस कहने लगे।

मन्दिर में आने वाले युवकों में से नरेन्द्र को वे बहुत प्रेम करते थे। यही आगे चलकर विवेकानन्द के रूप में प्रसिद्ध हुए। सितम्बर 1893 में शिकागो धर्मसम्मेलन में जाकर उन्होंने हिन्दू धर्म की जयकार विश्व भर में गुँजायी। उन्होंने ही 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। इसके माध्यम से देश भर में सैकड़ों विद्यालय, चिकित्सालय तथा समाज सेवा के प्रकल्प चलाये जाते हैं।

एक समय ऐसा था, जब पूरे बंगाल में ईसाइयत के प्रभाव से लोगों की आस्था हिन्दुत्व से डिगने लगी थी; पर रामकृष्ण परमहंस तथा उनके शिष्यों के प्रयास से फिर से लोग हिन्दू धर्म की ओर आकृष्ट हुए। 16 अगस्त, 1886 को श्री रामकृष्ण ने महासमाधि ले ली। ■

BHAURAV DEVRAS SARASWATI VIDYA MANDIR

H-107, SECTOR-12, NOIDA

CBSE RESULT 12TH (2021)

OVER ALL

Total	227
PASS	227
90 ABOVE	43
75 to Less than 90	102
60 to Less than 75	73
54 to Less than 60	9
Less than 54	NIL
RESULT	100
Students above 75%	145
Total Distinction in all sub.	**813**
Student got First Division	218

TOP 11

S.N	Name	%	Total Best 5
1	ADITYA KUMAR	95.8	479
2	VASU GOYAL	95.8	479
3	ANSHITA MISHRA	95.2	476
4	HIMANSHU PANDEY	95.2	476
5	ANUBHAV SINGH	95.2	476
6	PRADEEP	95	475
7	AARADHYA	94.6	473
8	SHAMBHAVI JHA	94.4	472
9	SACHIN KUMAR YADAV	94.2	471
10	NIKHIL KUMAR	94.2	471
11	DEVANSH KHARI	94	470

SUBJECT WISE TOPPER

NAME	ENG	MATH	BIO	PHY.	CHEM.	C.S.	PHY. EDU	HINDI	ECO.	B.ST.	ACC.	HIS.	GEO.
SACHIN KU. YADAV	98												
SHAMBHAVI JHA	98												
PRADEEP		99		98	97								
VINIT KUMAR GOYAL			98										
ANUBHAV SINGH						98							
ARADHYA							98						
HIMANSHU PANDEY							98						
BHARTI KUMARI								97				81	96
ADITYA KUMAR								97	96	93	95		
VASHU GOYAL								97	96	93	95		
DEEPAK BHATT										93	95		
DEVANSH KHARI											95		
91 - 100	63	18	11	16	21	9	24	39	9	15	11	0	10
81 - 90	52	14	10	36	28	14	47	53	16	3	5	1	6
71 - 80	74	28	4	30	32	19	41	80	24	33	12	15	15
61 - 70	25	14	4	11	12	4	13	42	31	28	21	10	11
51 - 60	12	42	2	0	0	0	1	13	28	10	30	17	3
41 - 50	1	1	0	0	0	0	0	0	9	0	8	2	0
33 - 40	0	0	0	0	0	0	0	0	1	0	2	0	0
TOTAL	227	117	31	93	93	46	126	227	118	89	89	45	45
DISTINCTION	171	45	25	76	70	39	102	144	41	42	21	14	23

- 91.3% students of science stream got above 75%
- 100% students of science stream got First Division
- 96% students got First Division
- 63.9% students got above 75%
- Students secure more than 75%

Subject	English	Bio	Phys.	Chem.	C.S.	Phy.Edu	Hindi
Percentage of Students	75.3	80.6	81.7	75.2	85	80.9	63.4

श्री सुशील कुमार जैन
अध्यक्ष

श्री रमन चावला
व्यवस्थापक

श्री रजनीश नारंग
कोषाध्यक्ष

श्री पंकज शर्मा
प्रधानाचार्य